



ईश्वर से दूरी क्यों?

— प्रकाश आर्य

॥ ओ३म् ॥ .

ईश्वर से दूरी क्यों ?

लेखक—

प्रकाश आर्य

महू (म०प्र०)

आर्य समाज संभाजीनगर
पानि न्याय माल, सप्तवती कॉलोनी.
लखनऊ
दि. / / २०

प्रकाशक :

श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास
हिण्डौन सिटी (राज०)—३२२ २३०

प्रकाशक : श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास
'अभ्युदय' भवन, अग्रसेन कन्या महाविद्यालय मार्ग,
स्टेशन रोड, हिण्डौन सिटी, (राज०)- ३२२ २३०
चलभाष : ०९४१४०३४०७२, ०९८८७४५२९५९
Email-aryaprabhakar@yahoo.com

संस्करण : सन् २०११

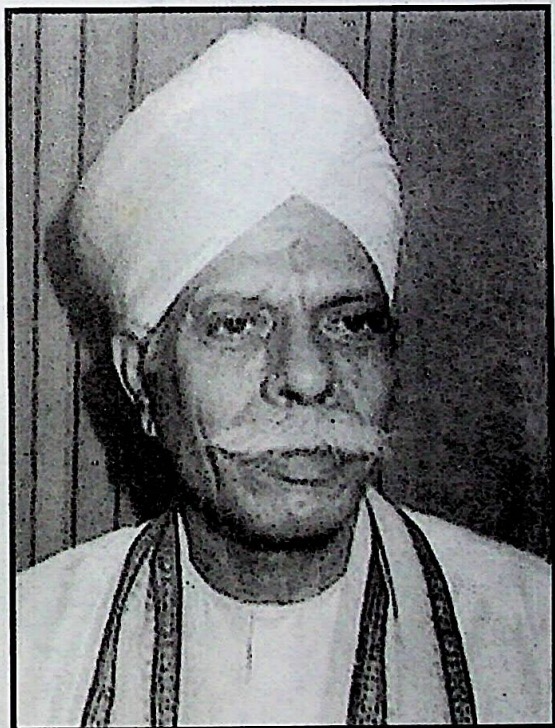
मूल्य : ३०.०० रुपये

प्राप्ति-स्थान : १. हरिकिशन ओम्प्रकाश, ३९९, गली मन्दिरवाली,
नया बाँस, दिल्ली-६, चलभाष : ०९३५०९९३४५५
२. श्री राजेन्द्रकुमार, १८, विक्रमादित्य पुरी, स्टेट बैंक
कॉलोनी, बरेली (उ०प्र०), चल० : ०९८९७८८०९३०
३. गणेशदास-गरिमा गोयल, २७०४, प्रेममणि-
निवास, नया बाजार दिल्ली-६
चलभाष : ०९८९९७५९००२

लेजर टाईपसेटिंग : आर्य लेजर प्रिंटर्स, हिण्डौन सिटी, राजस्थान

मुद्रक : राधा प्रेस, कैलाश नगर, दिल्ली-११० ०३१

सादर समर्पण



“ईश्वर से दूरी क्यों?” नामक यह सुमनाञ्जलि मेरे धर्म पिता दिवंगत पं० श्री राजगुरुजी शर्मा “विद्यावाचस्पति” की स्मृति में सादर समर्पित है।

—प्रकाश आर्य

हरिश्चन्द्र साहित्यानी सस्ता वेद साहित्य योजना के अन्तर्गत
स्मृति में

स्मृतिशेष-श्रीमती कमलाबेन हरिश्चन्द्र साहित्यानी



स्मृतिशेष-श्रीमती सीताबेन वी० साहित्यानी

स्मृतिशेष-श्री विजयकुमार साहित्यानी

सौजन्य से-

हरिश्चन्द्र साहित्यानी दाहोद वेद स्थिर निधि, रतलाम

♦ क्या आप ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त करना चाहते हैं?

तो पहले जानिए कि वह ईश्वर कहाँ रहता है? वह कैसा है? वह एक है या अनेक है? वह क्या करता है? उसका स्वरूप कैसा है? वह साकार है या निर्गकार? इन सब बातों को समझिए। आप उस ईश्वर को जानना चाहते हैं, तो देखें कि हमारे विद्वान् पूर्वजों ने, महापुरुषों ने और धर्म-ग्रन्थों में उसे कैसा बताया है। इसे जानने के लिए सन्त तुलसी दास, गुरु नानक देव, सन्त कबीर, दादू, सन्त तुकाराम, आदिगुरु शंकराचार्य, नचिकेता, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, विश्व प्रसिद्ध महान् विद्वान् आचार्य मनु, महापण्डित चाणक्य, भगवान् श्री राम, भगवान् श्री कृष्ण एवं धार्मिक ग्रन्थ गीता, रामायण, गुरुग्रन्थ साहब, कुरान, वेद, उपनिषद् दर्शनों, अन्य शास्त्रों तथा अनेक विचारों को, नेताओं, राजा राममोहन गय, महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि ने इस सम्बन्ध में क्या कहा है? उसे इस पुस्तक में पढ़िए और ईश्वर के सत्य स्वरूप को समझकर उसका सान्निध्य प्राप्त कर जीवन सफल बनाइए।

ईश्वर, प्रभु, भगवान, गॉड और खुदा।

नाम पर इनके हो रहे जुदा, जुदा ॥ १ ॥

ये कैसी भूल हमसे हो रही है।

एक पिता की सन्तानों में दूरी हो रही है ॥ २ ॥

आओ दूँदें, क्या है इसका कारण।

मनबुद्धि और आत्मा से हो निवारण ॥ ३ ॥

प्राक्कथन

ईश्वर से दूरी क्यों ?

(कृपया पुस्तक को पढ़ने से पहले इसे अवश्य पढ़ें)

प्रिय सुधी पाठकवृन्द !

मानव जीवन से सम्बन्धित अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय “ईश्वर” पर अपने विचार प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ, जो आपको ईश्वर के सम्बन्ध में सही निर्णय लेने में सहायक होगा। इस समस्त संसार में परमात्मा के पश्चात् मानव को ही संसार की सर्वोत्तम कृति माना जाता है। वह इसलिए, क्योंकि मानव चोले के माध्यम से ही ज्ञान, कर्म और उपासना सम्भव है। इस मनुष्य को ही परमात्मा ने विशेष बुद्धि का अनमोल उपहार देकर विचार शक्ति और कार्य करने की स्वतन्त्रता प्रदान की है। इसी चोले के द्वारा वह सुख, शान्ति, आनन्द, मोक्ष तथा ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर सकता है। मनुष्य के अतिरिक्त संसार की अन्य सभी योनियाँ केवल भोग योनियाँ हैं, उन्हें कार्य करने की स्वतन्त्रता नहीं है, उनको आत्मा या उसकी उन्नति का कोई ज्ञान और सामर्थ्य प्राप्त नहीं है।

आत्मा का आदर्श परमात्मा माना है, वही सब कुछ और सर्वश्रेष्ठ है। इतना ही नहीं उस प्यारे प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करना इस मानव जीवन की सर्वोत्तम उपलब्धि माना गया है। उससे निकटता बनी रहे, यह प्रत्येक के लिए बहुत आवश्यक है और हम सबके लिए हितकर है, यही हर व्यक्ति चाहता भी है। उस प्यारे प्रभु से हमारा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है, क्योंकि वह दाता है हम याचक हैं, वह माता है, पिता है, हम उसके पुत्र-पुत्रियाँ हैं; वह पालक है, हम बालक हैं; वही हमारा आचार्य, राजा व न्यायाधीश है और वही हमारा बन्धु, सखा, सब कुछ है। इस

प्रकार ईश्वर से हमारे अनेक सम्बन्ध जुड़े हुए हैं।

ईश्वर से सम्बन्धित कुछ विचार इस पुष्प के माध्यम से प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ, विषय हमारे जीवन के लिए बड़ा महत्त्वपूर्ण और गम्भीर हैं, इसलिए उसे पढ़ने के पूर्व यह भूमिका अवश्य पढ़ें, ताकि इस पुस्तक का महत्त्व और लिखने का मन्तव्य स्पष्ट हो सके।

विश्व का लगभग प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर से जुड़ा है, सारे विश्व में ईश्वर को न मानने वालों की संख्या बहुत कम है। ओ३म्, प्रभु, ईश्वर, भगवान्, परमपिता, परमात्मा, हरि, शिव, साईं, गॉड, खुदा, अल्लाह, परवरदिगार आदि ऐसे बहुत-से नामों से उसे हम पुकारते हैं। हमारे इन सभी सम्बोधनों में ईश्वर की ही कल्पना होती है।

वह परमात्मा दयालु, सबका रक्षक, बुद्धि का देने वाला, शान्ति और आनन्द का दाता है, दुःखों से छुटकारा दिलाने वाला और प्राणी मात्र का सहारा है। वही प्यारा प्रभु सभी को पिता के समान आश्रय देता है, वही माँ के जैसा ममत्व और अबोध बालक के समान मयको अपनी गोद में रखकर सुरक्षा भी देता है, उसका सान्निध्य अमृत है। हमारे जीवन का आधार वही है, ऋग्वेद के एक मन्त्र में बताया गया है—“यस्मात् ऋते न सिध्यति” अर्थात् उस प्रभु की कृपा के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। इर्मालिए उसका सान्निध्य होना अत्यन्त आवश्यक है इसलिए उसकी कृपा और उसको सदा याद रखना प्रत्येक मनुष्य का नैतिक कर्तव्य है।

ईश्वर को मानने वालों के सामने आज एक प्रश्न खड़ा है, क्या? प्रभु, ईश्वर, भगवान्, परमपिता, परमात्मा, साईं, गॉड, खुदा, अल्लाह, परवरदिगार ये सब अलग-अलग हैं? क्या इतने ईश्वर हैं? निश्चित ही आप कहेंगे नहीं, वह तो एक ही है। आपका यह सोच बिलकुल सत्य है, परन्तु यह बड़ी अजीब बात है कि, हम कहते तो हैं कि वह ईश्वर एक ही हैं, परन्तु मानते इसके विपरीत हैं। आज इस सत्य के विपरीत उसे अलग-अलग

मान रहे हैं। प्रचलित अनेक नामों के कारण उसे अलग-अलग और अनेक मानते हैं। जबकि हम कहते हैं कि ईश्वर एक है फिर ऐसा क्यों हो रहा है, इस पर कभी ध्यान ही नहीं दिया। इसका एक मात्र कारण है, ईश्वर के बारे में अलग-अलग जानकारी और मान्यताओं का होना परन्तु सही पहचान का अभाव।

आज ईश्वर को मानने वाले हम सब एक नहीं हैं, इसी कारण मानव कई भागों में बट गया है, ईश्वर के सम्बन्ध में ऐसी अनेक मान्यताएँ प्रचलित हैं जो एक-दूसरे से भिन्न-भिन्न हैं। इसी कारण अनेक भ्रान्तियाँ उस प्यारे प्रभु को लेकर हमारे मध्य व्याप्त हो गई हैं। आज हमने अपनी-अपनी मान्यता के अनुसार एक ईश्वर को अलग-अलग समझा और उसके अनेक रूपों से उसे वह अनेक हैं, ऐसा मान रहे हैं। इस मान्यता से ही आज ईश्वर के सम्बन्ध में हम भ्रमित हैं। इस अलग-अलग मान्यता के कारण, हमारी एकता व स्वयं की ईश्वर के प्रति हमारी आस्था में कमजोरी आई हैं।

अनेकता के कारण ईश्वर के नाम पर मानव से मानव की दूरी बढ़ गई है, ईश्वर के नाम पर विवाद हो रहे हैं, ईश्वर के नाम पर मन्दिर-मस्जिद के झगड़े चल रहे हैं, ईश्वर के नाम पर खून-खराबा हो रहा है, ईश्वर के नाम पर ही अशान्ति फैल रही है, ईश्वर की मान्यता को लेकर संसार द्वेष की अग्नि में झुलस रहा है। अनेक मजहब व मत-मतान्तरों का जन्म भी इसी भिन्नता के कारण हुआ है। फिर भी कहने को हम कहते हैं कि वही ईश्वर हम सबका पिता है। यह अलगाव समाज के लिए बहुत बड़ा खतरा बन गया है। यह आज समाज की ज्वलन्त समस्या है जिसका समाधान आवश्यक है। परन्तु इस पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है और सब स्वार्थवश अपना-अपना वर्चस्व बढ़ाने ही में व्यस्त हैं। ईश्वर के नाम पर बनी खाई को समाप्त करने का कोई प्रयास नहीं कर रहा है। ईश्वर के नाम पर जघन्य अपराध हो रहे हैं, ऐसी मानवीय हरकतों को देखकर ही एक

शायर ने लिखा—

खुदा के बन्दों को देखकर ही खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया।

ऐसे बन्दे हों जिस खुदा के वो कोई अच्छा खुदा नहीं है ॥

शायर की यह झोच स्वाभाविक ही है, यदि परमेश्वर के भक्त उसके नाम पर हिंसा करते हैं, समाज व राष्ट्र के लिए खतरा बनकर दुःख का कारण बने हैं, मानवता के लिए दरिन्दे बन चुके हैं, फिर भी ऐसे दुर्जन व्यक्ति अपने को धार्मिक व भगवान के भक्त कहते हैं तो ऐसे परमात्मा को मानने से क्या फायदा जिसके भक्त ऐसे गलत काम कर रहे हैं। इसलिए शायर ने लिखा कि फिर तो ऐसा खुदा ठीक नहीं है और इसलिए दुनिया उससे दूर हो रही है। यह ठीक ही लिखा है।

वास्तव में हम परमात्मा के सत्य स्वरूप को समझ ही नहीं पाये, उसके सम्बन्ध में बहुत भ्रम फैला हुआ है। ईश्वर के बारे में जिसने जैसा बता दिया वैसा ही बिना सोचे-समझे, भावना के प्रवाह में आँख मूंद कर हमने मान लिया और भिन्नता को जन्म दे दिया। कोई ईश्वर को एक मानता है, वही दूसरा अनेक ईश्वर मानता है, कोई ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है, तो कोई कुछ निश्चित स्थानों में ही मानता है, किसी ने उसे निराकार बताया है, तो कोई साकार बताता है, किसी की दृष्टि में वह अजन्मा है, तो कोई उसे अवतार के रूप में आना या जन्म लेना बताता है, कोई उसे देवालय या पाताल में रहना बताता है, तो कोई उसे चौथे और कोई उसे सातवें आसमान पर बताता है और कोई सर्वव्यापक मानता है। किसी की मान्यता है कि ईश्वर उसकी पूजा-पाठ प्रार्थना भेंट चढ़ाने से ही प्रसन्न होकर भक्त को बिना कुछ कर्म किए, सब कुछ दे देता है। किन्तु कुछ विचारधारा इसे गलत बताती है तथा हमारे द्वारा किए गए कर्मों के अनुसार, ईश्वर फल देता है, ऐसा माना जाता है।

इस प्रकार ईश्वर के नाम पर एक मत न होने से उसके सम्बन्ध में कई विचारधाराएँ प्रचलित हो गईं, इस कारण से ही अब ईश्वर का स्थान इस अल्पज्ञ, देहधारी मनुष्य ने भी लेना

प्रारम्भ कर दिया है। परिणाम स्वरूप आज ईश्वर के स्थान पर कई मनुष्यों को भी ईश्वर समझकर ईश्वर के रूप में उन्हें पूजा जा रहा है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के संशय हमारे विचारों में ईश्वर के सम्बन्ध में उठते हैं। ऐसी स्थिति में जहाँ मानवता बिखर रही है, वहीं व्यक्तिगत आस्था भी प्रभावित हो रही है। अनेक विचारों व मान्यताओं ने संशय को जन्म दे दिया। जहाँ संशय हो वहाँ उस व्यक्ति का न यह लोक सुधरता है न परलोक। योगिराज श्री कृष्ण ने कहा, “संशयात्मा विनश्यति” संशयशील व्यक्ति का नाश हो जाता है। संशय ही आत्मा और आस्था को कमजोर कर देते हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में व्याप्त भिन्नता प्रमुख चार कारणों से प्रायः दिखाई देती है, वे हैं—

१. ईश्वर कैसा है?
२. ईश्वर कितने हैं?
३. ईश्वर कहाँ रहता है?
४. और ईश्वर क्या करता है?

मेरा इस पुस्तक को लिखने का उद्देश्य उपरोक्त विषयों का सत्यज्ञान के आधार पर समाधान करना है। मेरा उद्देश्य किसी व्यक्ति या सम्प्रदाय का खण्डन करना नहीं है, अपितु सत्य का मण्डन करना है। किसी भी मान्यता पर कटाक्ष कर अपनी बात सिद्ध करने की भी मेरी कोई भावना नहीं है, न मैं अपनी लेखनी व विचारों से किसी का मन दुःखाना चाहता हूँ और न ही मैं अपने विचार जबरदस्ती किसी पर थोपना चाहता हूँ। ईश्वर के सम्बन्ध में जो भ्रान्तियाँ हैं, अन्धविश्वास और काल्पनिक मान्यताएँ हैं जिससे समाज भ्रमित होकर, विवादों में उलझा हुआ है, उनके स्थान पर सत्य का ज्ञान हो जावे। वे ईश्वर के नाम पर भ्रमित न हों और जैसा ईश्वर है वैसा ही उसे समझें यही चाहता हूँ। ऐसा होने पर ही समाज एकता के सूत्र में बन्ध सकता है, और सर्वत्र शान्ति हो सकती है।

कृपया इस पर भी ध्यान देवें कि, यह पुस्तक ईश्वर के

सम्बन्ध में लिखी अनेक पुस्तकों, विद्वानों, सन्तों और धर्म ग्रन्थों को आधार बनाकर लिखी है, उन सभी को आप और हम जानते हैं, मानते हैं। और इन्हीं बातों को सर्वप्रथम ईश्वरीय ज्ञान वेद में बताया गया है, वही मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ। मैं कोई नई बात बताने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए विश्वास करें ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ, वह केवल मेरी अपनी स्वयं की मान्यता का आधार नहीं है, न मेरा अपना इतना सामर्थ्य है और ना ही इसमें यहाँ कुछ नया है। मैंने इस सम्बन्ध में जो कुछ स्वाध्याय, सत्संग व विद्वानों के सान्निध्य से प्राप्त किया है, और जैसा समझा वही कुछ सरल भाषा में आप तक पहुँचाने का प्रयास मैं कर रहा हूँ, बस यही मेरा पुरुषार्थ है। मैं यह छोटा-सा परिश्रम इसलिए करना चाहता हूँ कि आप इसे पढ़ें, उस पर चिन्तन करें, मनन करें, सत्य और असत्य पर विचार करने के पश्चात्, ईश्वर कैसा है ? कहाँ है ? कितने हैं ? क्या करता है ? इस सत्य को समझें और जो सत्य हो उस पर विश्वास करें व मानें।

अब यहाँ यह सोचना होगा कि, ईश्वर के सम्बन्ध में जो विचारधाराएँ उसके अनेक रूप के विषय में प्रचलित हैं, क्या वे सभी सही हैं ? यदि सभी सही नहीं है तो इन, अनेक, विचारधाराओं में से कौन-सी सही है ? उसके सही स्वरूप का पता कैसे चले ? सही जानने के लिए कौन-सा आधार प्रामाणिक है ? इस सम्बन्ध में सनातन वैदिक धर्म के विश्वसनीय ग्रन्थ न्यायदर्शन में बताया गया है कि किसी भी एक बात के सम्बन्ध में दो विपरीत विचार जहाँ पाये जावें तो वे दोनों सही नहीं हो सकते। उनमें से कोई एक सही और एक गलत होगा। किन्तु आश्चर्य है ईश्वर के स्वरूप नाम व कार्यों को लेकर अनेक विपरीत विरोधाभासी बातें होने पर भी, उन्हें एक ही माना जा रहा है। धर्म व ईश्वर के सम्बन्ध में प्रायः यह कहा जाता है कि सारे मजहब, सम्प्रदाय जो भी बात कहते हैं, वे सारे रास्ते एक ही जगह जाते हैं, और यह भी सुना जाता है कि कहीं से

भी, किधर से भी जावे, सब एक ही जगह पहुँचेंगे। परन्तु यह सही नहीं है, गलत रूप से मानने पर या मंजिल की विपरीत दिशा में चलने पर हम कभी मंजिल को प्राप्त नहीं कर सकते, यह कभी सम्भव नहीं है, यह अज्ञानता है और कोरी कल्पना है।

इस विषय पर व्याप्त अलग-अलग विचारों में सत्य की जानकारी के लिए हमें सभी विचारधाराओं में श्रेष्ठ, निष्पक्ष, प्रामाणिक व सत्य पर आधारित विचारधारा की खोज करनी होगी। इसलिए पुनः थोड़ा इस पर गम्भीरता से विचार करें। ईश्वर व धर्म के सम्बन्ध में प्रायः संसार की सभी मान्यताएँ और सम्प्रदाय किसी महापुरुष के विचार या उसके जीवन पर प्रचलित हैं। किसी भी सम्प्रदाय के व्यक्ति से पूछें तो वह अपने महापुरुष को ही सबसे श्रेष्ठ अपने सम्प्रदाय या महापुरुष को मानेगा, किसी से छोटा नहीं मानेगा। कई सम्प्रदाय अपने को धार्मिक कहते हुए भी ईश्वर को नहीं मानते किन्तु वे फिर भी अपने को सही मानते हैं। इसीलिए किसी एक सम्प्रदाय की बात को दूसरा सम्प्रदाय कभी स्वीकार नहीं करता है, और न कभी करेगा। क्योंकि सभी अपने-अपने महापुरुषों या आराध्य के मार्ग को ही श्रेष्ठ मानते हैं, और यही विवादों का कारण है। यह विवाद कभी थमने वाला नहीं है, इसके लिए हमें ऐसा देखना होगा, कोई ऐसा विचार जो इन सब से ऊपर हो, सर्वोत्तम हो, जो मनुष्यकृत न हो, सभी मानवीय ज्ञान से ऊपर हो, वही सर्वमान्य हो सकता है।

संसार के सभी मत-मतान्तरों और महापुरुषों से सम्बन्धित ग्रन्थ का समय कुछ हजार साल पूर्व तक है। मर्यादा पुरोषोत्तम राम और योगेश्वर श्री कृष्ण को छोड़ सभी का समय आज से ५००० वर्ष के भीतर का ही है। किन्तु वर्तमान सृष्टि रचना को लगभग दो अरब वर्ष होने जा रहें हैं, तो क्या कुछ हजार वर्षों के पूर्व फिर कोई अन्य ज्ञान हमारे लिए था ही नहीं? और यदि था तो वह कौन-सा था?

ईश्वर से दूरी क्यों ?

१३

आज जितने धर्म ग्रन्थ पाये जाते हैं, उन सबकी रचना करने वालों के नाम हम जानते हैं या उनका पता लग सकता है। किन्तु इस पर ध्यान दें कि वेद के रचयिता का नाम कहीं नहीं है, क्योंकि एक मात्र वेद ही ऐसा ज्ञान है, जो मनुष्यकृत ज्ञान नहीं है, अर्थात् वह किसी व्यक्ति द्वारा लिखा हुआ या किसी महापुरुष से सम्बन्धित नहीं है, न किसी मनुष्य का उसमें सन्देश है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है जो कि जाति, सम्प्रदाय या देश, काल से बंधा हुआ नहीं है इसलिए संसार के सभी मत-मतान्तर और महापुरुष इसे मानते हैं। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है 'उसकी सम्पूर्णता'। मानव जीवन की समस्त श्रेष्ठ इच्छाओं की प्राप्ति का मार्ग केवल इसी में प्राप्त हो सकता है। ईश्वर, प्रकृति, जीव, ज्ञान, विज्ञान, भूगोल, परिवार, व्यवहार, धर्म, राजनीति, संगीत, स्वास्थ्य, शस्त्रकला आदि सब कुछ इसमें हैं। इसमें इतना सब कुछ इसलिए सम्भव हुआ क्योंकि वह परमपिता जो पूर्ण हैं, यह उसका ज्ञान है।

इसलिए वेद के विरुद्ध और उसकी मान्यताओं का खण्डन आज तक संसार में कोई नहीं कर सका। इस प्रकार यह सर्वमान्य ज्ञान है। इस प्रकार वेद पर हमें दृढ़ता से विश्वास करना चाहिए। महान् विद्वान् आचार्य मनु ने वेद को धर्म का सर्वोत्तम प्रमाण बताते हुए कहा—“धर्म जिज्ञासामानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।” मानव व्यवस्था, उन्नति व सुरक्षा के लिए यह ज्ञान सृष्टि के आदि में ही सर्वप्रथम परमात्मा ने मानव को दिया है जो वेदों के रूप में हमारे सामने हैं। ईश्वर का पूर्ण परिचय, उसके गुण, कर्म, स्वभाव क्या है तथा वह कैसा है? यह सब वेदों में विस्तृत रूप से बताया है।

विगत ५००० वर्षों में अनेक मान्यताएँ प्रचलित हो गईं किन्तु अनेक विद्वानों, सन्तों व धर्मग्रन्थों ने भी ईश्वर को वैसा ही बताया जैसा वेद में उसका स्वरूप बताया है क्योंकि धर्म व सब सत्यज्ञान का आदि स्रोत तो वेद ही है। ईश्वर के सम्बन्ध में वेद की ही बात अनेक स्थान पर कहने वालों में प्रमुख है— सन्त तुलसीदास, गुरु नानकदेव, सन्त कबीर, दादू, सन्त तुकाराम,

सन्त रैदास आदिगुरु शंकराचार्य, महर्षि वाल्मीकि, नचिकेता, महर्षि दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द, विश्वप्रसिद्ध, महान् विद्वान् आचार्य मनु, महापण्डित चाणक्य, भगवान् श्रीराम, भगवान् श्रीकृष्ण एवं गीता, रामायण, गुरुग्रन्थ साहब, कुरआन, पुराण बाइबिल, उपनिषद्, दर्शनशास्त्र तथा अनेक सामाजिक व राष्ट्रीय ख्यातनामा विद्वानों, विचारकों जैसे राजा राममोहन राय, महात्मा गाँधी, पं० जवाहरलाल नेहरू आदि तथा अनेक विदेशी विद्वानों ने भी ईश्वर के सम्बन्ध में जो बताया है वही सार मैं यहाँ प्रस्तुत कर रहा हूँ।

यदि आपने समस्त संसार की निष्पक्ष व सत्य ज्ञान से पूर्ण ईश्वरीय वाणी वेद पर विश्वास किया तो फिर आपको ईश्वर के सम्बन्ध में कहीं भटकना नहीं होगा, उसे पाने के लिए समय व धन का अपव्यय भी नहीं करना होगा तथा हर पल उस प्रियतम से आपका सान्निध्य बना रहेगा यह विश्वास रखें।

प्रायः ईश्वर के प्रति आस्था, विश्वास तथा श्रद्धा को लेकर ही हम उससे मिलना चाहते हैं, किन्तु यह हमारा अधूरा प्रयास है। हमारे लक्ष्य की प्राप्ति तो श्रद्धा के साथ ज्ञान को जोड़ने से पूर्ण होगी। मात्र श्रद्धा, भावना या विश्वास उस लक्ष्य तक हमें कभी नहीं पहुँचा पायेगा। याद रखिए, कोरी श्रद्धा से भाव तो उत्पन्न होंगे, पर वह सत्य-असत्य का ज्ञान नहीं करा सकती है। और यह आस्था है, भावना है। श्रद्धा शब्द सत्+धा से बना है, “सत्” से तात्पर्य सत्य ज्ञान, “धा” से तात्पर्य, धारण करना अर्थात् सत्य ज्ञान को धारण करना ही “श्रद्धा” कहलाती है। बिना सत्य ज्ञान के श्रद्धा अन्धश्रद्धा है जो अन्धविश्वास को जन्म देती है।

संसार का कोई भी व्यक्ति पूर्ण नहीं है, सारे व्यक्ति मिलकर भी पूर्ण नहीं हो सकते, पूर्ण तो केवल परमात्मा है, यह ध्रुव सत्य है। किन्तु कई बार हम यह गलती कर बैठते हैं कि जो मैंने समझा है, जो मैं मान रहा हूँ वही ठीक है। यह विचार किसी के लिए ठीक नहीं है, ये हठी स्वभाव व संकीर्णता का

ईश्वर से दूरी क्यों ?

१५

परिचायक हैं। खुले दिमाग से हम किसी विचार को पढ़ें, सुनें, फिर उस पर अपनी तार्किक बुद्धि से मनन करें और जो सत्य है उसे मान लेवें यह उचित है। एक आदर्श जीवन के लिए महर्षि दयानन्द ने कहा—“सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सदा उद्यत रहना चाहिए।” भूल सुधार ही मनुष्य को सही दिशा प्रदान करती है। इसमें हीन भावना नहीं अपितु प्रसन्नता और एक उपलब्धि का अनुभव करना चाहिए।

कभी-कभी हम पुरानी रूढ़िगत मान्यता से इतने गहरे सम्बन्ध बना लेते हैं कि फिर उन्हें किसी दशा में छोड़ना नहीं चाहते, उससे हटकर कुछ भी सुनना नहीं चाहते, भले ही हमारी मोच गलत क्यों न हो। किन्तु हमारी मान्यता के विपरीत सुनने पर हम विचार नहीं करते व एकदम तिलमिला जाते हैं। या यह कहकर समाधान कर लेते हैं कि क्या करें वर्षों से जिसे मान रहे हैं पूर्वज जिसे मानते रहे, दुनिया मान रही है, अब उसे कैसे छोड़ें। अब थोड़ी बची है थोड़ी-सी के लिए अब क्या बदलें ?

हमारी अधिकांश मान्यता का आधार परम्परागत मान्यताएँ और बहुत संख्या में मानने वालों की भीड़ बन गया है। किन्तु यह ज्ञानमय विचार न होकर भेड़ चाल है, यह तो किसी को देखकर उसकी नकल करना हुआ। यह तरीका किसी बात को मानने का ठीक नहीं ? सनातन पौराणिक धर्म के अनुयायी (हिन्दुओं) की अपेक्षा इस्लाम व ईसाई मत को मानने वालों की संख्या सारे विश्व में कई गुना अधिक है। इस्लाम व ईसाई मत की पूजा की पद्धति, खान-पान, रीतिरिवाज सनातन धर्म से अलग है। शराब, मांस, गोमांस का प्रयोग उनमें बुरा नहीं माना जाता है, पशुबलि, पूजा पद्धति है। मौसी की लड़की, मामा की लड़की, चाचा की लड़की से विवाह करना इस्लाम में बुरा नहीं है, चार पत्नी रखना बुरा नहीं है। फिर बहुत संख्या में मानने वालों की इन बातों को सनातनधर्मी स्वीकार क्यों नहीं करते हैं ?

इसलिए नहीं क्योंकि संख्या को नहीं, गुणवत्ता को स्थान दिया जाता है। संसार में भीड़ देखकर प्रभावित नहीं होना चाहिए

अपितु गुण व सत्यता को देखकर निर्णय लेना चाहिए, यही मानवीय गुण है और ऐसा मानना ही उचित मानना है।

जो मान रहे हैं उससे अब क्यों छोड़ें? जो चल रहा है उसे चलने दो, यह भी प्रायः सुना जाता है। परन्तु यह विचार जीवन के लिए उपयुक्त नहीं है। यदि हम किसी स्थान पर पहुँचने के लिए गलती से कोई गलत राह पकड़ लें जो उस स्थान के लिए नहीं अपितु कहीं और जाती है और इस गलती को कोई बता दे तो हम तत्काल वह रास्ता छोड़कर सही रास्ता पकड़ लेते हैं। क्या आपके लिए यह व्यवहार अनुचित है या हानिकारक है? नहीं, निश्चित ही यह निर्णय लाभप्रद होगा। परमात्मा का ज्ञान, उसकी शक्ति उसकी व्यवस्था सर्वोच्च है, अन्तिम है। उससे श्रेष्ठ या ऊपर कुछ हो ही नहीं सकता। जैसे न्याय व्यवस्था में सुप्रीम कोर्ट (सर्वोच्च न्यायालय) को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, उससे ऊपर कोई कोर्ट नहीं। बस, वही स्थिति परमात्मा के ज्ञान (वेद) को समझकर उसे ही सर्वोच्च मानना चाहिए, पूर्ण विश्वास करना चाहिए।

किसी जमाने में समुद्र पार करना धार्मिक मान्यता के विरुद्ध था, दिशाशूल का बहुत महत्त्व था, इससे अनेक क्षतियाँ उठानी पड़ी। मृत्यु हो जाने पर व्यक्ति १२ दिन से लेकर १ माह तक घर पर ही रहते थे, मृत्युभोज कराना समाज में बहुत अच्छी परम्परा मानी जाती थी। स्त्री और शूद्र को पढ़ने-पढ़ाने से वंचित रखा जाता था, किन्तु अब ये सब रूढ़िगत मान्यताएँ समाप्त हो गई। ऐसी मान्यताओं में अज्ञान था जब उसका बोध हुआ तो सब बदल गया। यदि हम पुरानी अन्धविश्वास से भरी रूढ़ियों को ही पकड़कर बैठे रहते तो आज व्यक्ति का, समाज का व देश का इतना विकास नहीं होता। जीवन उत्थान के लिए जो उचित है उसे स्वीकार कर लेना श्रेष्ठ व्यक्ति का गुण है।

पुरानी मान्यताओं से अत्यन्त लगाव नए विचार को मानने में बाधक होता है। यह प्रस्तुत उदाहरण से स्पष्ट होता है, कृपया देखें—

दो चीटियाँ सहेली थीं, एक चींटी शक्कर के कारखाने के पास निवास करती थी तो दूसरी नमक निर्माण जहाँ होता था वहाँ रहती थी। इस कारण एक का भोजन शक्कर व दूसरी का नमक बन चुका था।

शक्कर खाने वाली चींटी ने सोचा क्यों न मैं अपनी सहेली को यहाँ अपने पास ले आऊँ ताकि उसे भी स्वादिष्ट मीठा भोजन मिलेगा और साथ-साथ रह लेंगी।

इस विचार से वह अपनी सहेली जो नमक के ढेर के पास रहती थी उसके पास गई और उसे अपने साथ चलने तथा स्वादिष्ट मीठा भोजन सदा मिलते रहने की बात बताई। इस बात को सुनकर नमक खाने वाली सहेली ने मना कर दिया और बोली कि भोजन तो मुझे यहाँ पर पर्याप्त मिलता है, बहुत मात्रा में है तुम्हारे यहाँ कितना होगा? उसका स्वाद कैसा होगा? क्या पता इसलिए मुझे यहीं रहने दो। शक्कर के स्वाद को बताते हुए चींटी बोली—‘अरे, तुम मेरे साथ एक बार चलो तो सही, इस सारे बेस्वाद भोजन को भूल जाओगी, जो एक बार भी मेरे यहाँ के भोजन को चख लिया तो।’

परन्तु फिर भी सहेली जाने को तैयार नहीं हुई, संशय और पुराना नमक का प्रेम उसे रोक रहा था। परन्तु बहुत आग्रह करने पर फिर वह साथ चली गयी। वहाँ देखा नमक जैसी सफेद रंग की वस्तु काफी मात्रा में पड़ी हैं। शक्कर वाली चींटी ने बताया—‘यही है वह स्वादिष्ट भोजन शक्कर।’ इसके बाद दोनों उसे खाने पहुँची, तो नमक खाने वाली चींटी शक्कर खाकर हँसने लगी। इस पर शक्कर वाली चींटी बोली—हँस क्यों रही हो? क्या यह अच्छा नहीं लगा? या यह तेरे खारे भोजन से खराब है, क्या तुझे कोई अन्तर नहीं लग रहा? चींटी ने उत्तर दिया—हाँ यह सही है मुझे तो मेरे यहाँ की नमक और तेरी इस शक्कर के स्वाद में कोई अन्तर नहीं लगा।

शक्कर वाली चींटी को आश्चर्य हुआ उसने विचार किया ऐसा कैसे हो सकता है? जरूर कोई बात है जो मीठे और

नमकीन में अन्तर नहीं कर पा रही है। उसने सहेली से इसका कारण पूछा तो पता चला जो नमक वाली चींटी जब चलने लगी तो पुराने स्वाद का मोह नहीं छोड़ पाई और नमक के कुछ कणों को मुँह में रख लाई थी। उसकी यह धारणा थी कि नमक से अच्छा और कोई स्वाद हो ही नहीं सकता है। इसलिए शक्कर खाते समय भी उसके मुँह में नमक भी था। अब चींटी की समझ में आ गया कि अरे! जब पहले से ही मुँह में नमक भरा था तो शक्कर का स्वाद कहाँ से इसे मिलेगा? शक्कर के प्रभाव को, नमक के स्वाद ने, बेअसर कर दिया।

ध्यान रहे, कहीं यही स्थिति हमारी न हो? पुरानी, काल्पनिक मान्यताएँ हमें सत्य को ग्रहण करने में कहीं बाधक न बने इसका ध्यान अवश्य रखें। खुले मन से विचार करें और जो उचित हो उसे मानें। ईश्वर को श्रद्धा से ही पाया जाता है परन्तु श्रद्धा ज्ञान युक्त हो। श्रद्धा का यह अर्थ नहीं कि उसके सम्बन्ध में उचित-अनुचित जैसा भी समझ आवे, उसे वैसा ही मान ले व विश्वास कर लेवें। वास्तव में जो जैसा हो उसे वैसा ही मानना, सही मानना है और श्रद्धा है।

संसार का कोई भी ज्ञानी, दानी, वैज्ञानिक, डॉक्टर, इन्जीनियर, यह नहीं कह सकता कि जो मैंने पा लिया या खोज कर ली बस इसके आगे अब और कुछ नहीं हो सकता। आगे के अनुसंधान व ज्ञान के द्वार हमेशा खुले रहते हैं तभी संसार नए-नए तथ्यों से परिचित होता है। फिर ईश्वर और धर्म के लिए हम यह क्यों नहीं अपनावें?

इसलिए ईश्वर के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए पहले उसे समझो फिर मानो। बिना जाने उसे मानना मात्र भ्रम है, अन्धविश्वास है और औपचारिकता है। आज का व्यक्ति—“मौत को जानता है पर मानता नहीं, और ईश्वर को मानता है, पर जानता नहीं।”

इसलिए मुझे विश्वास है इस पुस्तिका को निष्पक्ष भाव से जो पढ़ेंगे तथा इन विचारों पर सत्य और असत्य के आधार पर चिन्तन करेंगे उनका ईश्वर के प्रति विश्वास बढ़ेगा, आस्था

ईश्वर से दूरी क्यों?

१९

बढ़ेगी और वे ईश्वर के सत्य स्वरूप को समझेंगे; भ्रम और पाखण्ड से बचेंगे। ईश्वर के लिए उन्हें इधर-उधर कहीं भटकना नहीं पड़ेगा, यह निश्चित है।

इस पुस्तक की रचना में अनेक विद्वान् लेखकों द्वारा रचित साहित्य को पढ़ा, समझा और अनेक विद्वानों के सत्संग का भी लाभ प्राप्त हुआ है। साथ ही इस रचना की शुद्धता में विद्वान् डॉ० सुरेन्द्रजी गुड़गाँव (हरियाणा) का विशेष सहयोग व मार्गदर्शन मिला है उनका तथा श्री रामलालजी शास्त्री विद्याभास्कर महू का भी मैं हृदय से आभारी हूँ। आप सुधी पाठकगण जीवन के इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय को पढ़कर लाभ प्राप्त करें और प्यारे प्रभु का सान्निध्य प्राप्त करें, इसी भावना से ईश्वर सम्बन्धी विचारों की शृंखला में यह पुष्प आपको सादर प्रस्तुत है।

आपका

—प्रकाश आर्य

महू (म०प्र०)

चलभाष : ०९८२६६५५११७

प्रथम भाग

ईश्वर कैसा है ?

जिस परमात्मा से हम मिलना चाहते हैं वह कैसा है, उसे कैसे पहचाना जा सकता है, उसको मिलने के पहले यह जानना परम आवश्यक है। किसी का ठीक ज्ञान व पहचान न होने से पास की वस्तु से भी हम दूर रहते हैं। जैसे, एक बार किसी व्यक्ति के घर कोई मेहमान दूसरे शहर से आने वाला था। उसको लाने के लिए उसने अपने सेवक को रेलवे स्टेशन भेज दिया, रेल आने का समय हो चुका था इसलिए जल्दी-जल्दी में मेहमान को लाने की बात को सुनते ही सेवक रेलवे स्टेशन पहुँच गया। रेल आई सारे यात्री प्लेटफार्म से बाहर निकल गए। वह सेवक वहाँ खड़े-खड़े यात्रियों को देखता रहा। फिर थोड़े समय पश्चात् खाली हाथ घर लौट आया। वह आकर अपने स्वामी से बोला कि मेहमान तो नहीं मिले। तभी एक सज्जन जो वहाँ बैठे थे उन्हें बताते हुए स्वामी ने कहा—“अरे भाई, ये ही तो आने वाले थे।” इस पर सेवक बोला—“अरे! इन्हें तो मैंने वहाँ देखा था, परन्तु मुझे क्या मालूम था कि यही आने वाले थे।” देखिए वह व्यक्ति मेहमान को सामने रहने पर भी पहचान नहीं पाया क्योंकि उसके बारे में उसे पूर्व से जानकारी नहीं थी। आज हमारी स्थिति भी ईश्वर के सम्बन्ध में कुछ ऐसी ही है। एक शायर ने ईश्वर के बारे में लिखा है—

“मैं और मेरा यार एक ही गली में रहते हैं,
पर फिर भी मिलने को तरसते हैं।”

इसलिए परमात्मा से भेंट करने की जो इच्छा रखते हैं, उनके लिए पहला सुझाव यही होगा कि वह परमात्मा कैसा है, पहले यह अच्छी तरह जान लेवें, ताकि उसे जानने में भ्रम न

हो।

ईश्वर और धर्म के सम्बन्ध में किसी भी बात पर आँख मूंदकर विश्वास कर लेना प्रायः अच्छा माना जाता है, जो व्यक्ति ईश्वर और धर्म का स्वरूप जैसा भी, जिस रूप में भी वह समझ रहा है उसे वैसा ही मान लेने में ही अपनी भक्ति हो गई मान लेता है। और मान लेता है कि वह धर्मात्मा है, भक्त है। समाज भी ऐसे व्यक्ति को ही श्रद्धालू कहता है, उसे ही आस्तिक मानता है। और जो व्यक्ति इसमें तर्क करे, शंका करे, समझने का प्रयास करे तो समाज उसे नास्तिक और धर्म-विरोधी मानता है, प्रायः यह मान्यता समाज में चल रही है।

परन्तु किसी बात को बिना सोचे-समझे सत्य-असत्य पर विचार किए बिना, आँख मूंदकर मानना मनुष्यता का गुण नहीं है, यह तो भेड़चाल है। भेड़ सिर्फ चर्म चक्षुओं के आधार पर आगे चलने वाले को देखकर आगे बढ़ती है, वहाँ ज्ञान चक्षु शून्य होते हैं। “पश्यति सा पशुः” जो सिर्फ देखकर ही चले वह पशु है। जरा विचार करें! कहीं हमारी स्थिति भी ऐसी तो नहीं है? प्रायः व्यक्ति ऊपरी रूप देखकर ही प्रभावित हो जाता है। आज का समाज किसी बड़े पद पर बैठे व्यक्ति को या अति सम्पन्न व्यक्ति को देखकर, आडम्बर से प्रभाव डालने वाले कार्यक्रमों की सजावट से प्रभावित होकर, कार्य की विशालता और भीड़ को देखकर ही वहाँ आकर्षित हो जाता है और वहीं अच्छाई होना मान लेता है। वह उसके गुण दोषों पर विचार नहीं करता न उन्हें वह जानना चाहता है, मात्र भावना के प्रवाह में उनका अनुसरण करने लगता है और वहीं अच्छाई होना मान लेता है।

किन्तु यह ठीक नहीं। पद, पैसा, भीड़ सजावट तो किसी गलत स्थान पर भी पायी जा सकती है। मानवता का गुण तो मननशीलता है। किसी भी बात पर उचित-अनुचित का विचार व चिन्तन करना, सत्य-असत्य के आधार पर निर्णय कर फिर उसे मानना चाहिए। अर्थात् आँखें मूंदकर नहीं अपितु ज्ञानचक्षु

से किसी भी बात पर विचार कर निर्णय करना मानवता का गुण है। धर्म व ईश्वर के नाम पर आदमी भीड़ देखकर कोरी भावना में बहकर प्रभावित हो जाता है, परन्तु जब सत्यता का पता चलता है तो पछताता है, रोता है। गलत मार्ग पर चलते हुए कई व्यक्ति जिन्दगी बिता देते हैं, उनका जीवन निष्फल होकर रह जाता है। कुछ ऐसे एक शायर ने लिखा—

जब तक जिन्दगी को ना समझा, जी लिया,

जब आ गई समझ, तो बेमौत मर गया।

किसी भी सम्बन्ध में जहाँ सत्य का पूर्ण बोध हो वहाँ मान्यता में दृढ़ता, निश्चितता होगी तथा आत्मबल ऊँचा होगा और स्थायित्व होगा। जहाँ पूर्ण जानकारी नहीं होगी वहाँ भ्रम रहेगा, और भ्रम आपके विचारों को अस्थिर और पुरुषार्थ को कमजोर बना देता है, फिर उसमें आत्मविश्वास नहीं रहता। इसलिए कहा गया—

बिना विचारे जो करे, सो पाछे पछताय।

काम बिगारे आपनो, जग में होत हंसाय॥

इसलिए बिना सत्य-असत्य का विचार किए धर्म को, ईश्वर को मानना मात्र प्रयास की श्रेणी में आता है। इसी बात को आचार्य मनु ने कुछ ऐसे कहा—‘यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्म वेद नेतरः।’ अर्थात्—ज्ञान की कसौटी पर तर्क-वितर्क के द्वारा सत्य को जानकर धर्म को मानें।

व्यक्ति छोटी-सी बात पर कई बार सोचता है, फिर उसे करता है। कोई वस्तु खरीदने के पहले कई जगह उसे ढूँढ़ता है, जहाँ भाव ठीक हों, वस्तु अच्छी हो, फिर वहाँ से वह खरीदता है। परन्तु हमारी ईश्वर के सम्बन्ध में स्थिति इसके विपरीत है! ईश्वर जो जीवन का महत्त्वपूर्ण पहलू है, जो जीवन को दिशा व आत्मबल देता है, उसको बहुत महत्त्व नहीं देते। उसके सम्बन्ध में जिसने जो हमें बताया, जैसा बताया या जैसा करते हुए हमने दूसरों को देखा, तत्काल उस पर विश्वास कर लेते हैं। यह जानने का प्रयास ही नहीं किया कि जो मान रहे

ईश्वर से दूरी क्यों?

२३

हैं, देख रहे हैं, वह कितना सही है? ऐसा मानना सार्थक है भी या नहीं है? परन्तु ध्यान रहे, यदि ईश्वर जैसा है, उसे वैसा नहीं समझा, वैसा नहीं जाना और यँही मानते रहे तो फिर आप ईश्वर को नहीं उसकी जगह कुछ और मान रहे हैं, और ईश्वर को मानने का भ्रम पाल रहे हैं।

लोग बहुत कुछ समझाते हैं, और बिना सोचे हम अपनाते हैं।

पर जब हकीकत जानी, तो फिर आँखों में आँसू ही आते हैं ॥

सुधी पाठकगण! पूर्ण मानसिकता बनाकर यह समझने का प्रयास करें कि वास्तव में ईश्वर कैसा है, और ईश्वर कौन हो सकता है? एक और निवेदन है पुस्तक के विचार मानव जीवन से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध रखते हैं, इसलिए अपने विचारों को स्वतन्त्र रखकर थोड़ी गम्भीरता से इसे पढ़ें तो ही आपको इन विचारों का लाभ होगा।

किसी भी वस्तु, स्थान या व्यक्ति को पहचानने की प्रथम आवश्यकता है, उसका स्वरूप, उसकी उपयोगिता, उसके कार्य, उसके गुण और स्वभाव की जानकारी होना। अनेक वस्तुएँ एक समान दिखाई देती हैं, जो भ्रम उत्पन्न करती हैं। जैसे देखने में शक्कर, नमक, सोडा, रासायनिक खाद जो सफेद दानेदार होती है, एक जैसे ही दिखाई देते हैं। शुद्ध घी व वनस्पति घी जो नकली है, वह भी एक समान दिखाई देते हैं, सोना व पीतल एक रंग के होने से भ्रम पैदा कर देते हैं, ऐसे अनेक उदाहरण हैं। किन्तु उन सबके गुण, कर्म, स्वभाव, परिणाम की सही जानकारी होने से उनको सही रूप में हम पहचान सकते हैं।

ठीक इसी प्रकार ईश्वर के प्रति भ्रम नष्ट करने के लिए परमात्मा के गुण, कर्म और स्वभाव की ठीक से जानकारी होने पर ही हमें उसके सत्य स्वरूप का बोध हो सकता है। ऐसा ज्ञान होने पर, फिर उसके नाम पर भ्रमित होकर हमें धोखा नहीं होगा।

आइए परमात्मा कैसा है? इस सम्बन्ध में संसार की सर्वोत्तम व प्रथम संस्कृति के मूल, धर्म के आधार, सनातन, ईश्वरीय ज्ञान

“वेदों” में क्या बताया गया है, पहले इस पर ध्यान देते हैं।
 स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरशुद्धमपापविद्धम्। क्विर्मनीषी
 परिभूः स्वयम्भूरीथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

—यजु० ४०।८

इस मन्त्र का अर्थ है—वह ब्रह्म, सर्वशक्तिमान् अर्थात् वह सारी शक्तियों का स्वामी है। स्थूल, सूक्ष्म और शरीर से रहित अर्थात् वह शरीर वाला नहीं है, इन आँखों से उसे देखा नहीं जा सकता है, उसे छुआ भी नहीं जा सकता है, वह निराकार है। वह निराकार है इसलिए उसके टुकड़े नहीं हो सकते। छिद्र रहित जिसके दो टुकड़े नहीं हो सकते नाड़ी आदि बन्धन-रहित है, अविद्या आदि दोषों से रहित, सर्वज्ञ, सदा सब जीवों की मनोवृत्तियों को जानने वाला है। दुष्ट पापियों का तिरस्कार करने वाला है, अनादिस्वरूप, वह सदा है, सदा रहेगा, वह न नष्ट होता है, न जन्म लेता है, जिसकी संयोग से उत्पत्ति और वियोग से विनाश नहीं होता, जिसके माता-पिता कोई नहीं, जिसका गर्भवास, जन्म, वृद्धि और क्षय नहीं होते, वह परमात्मा सनातन है। उसकी उत्पत्ति या विनाश नहीं हो सकता, वह उत्पत्ति व विनाश रहित है, जो वेद के द्वारा सब पदार्थों का अच्छी तरह उपदेश करता है। वही परमात्मा तुम्हारी उपासना के योग्य है। “कण-कण में जो व्यापक है, सिन्धु की जल तरंगों में समाया है, फूलों में बसी उसकी ही सुगन्ध है।” ऐसा सर्वव्यापक जो है वही परमात्मा है।

इस मन्त्र के पश्चात् थोड़ा इस पर विचार करें कि क्या किसी शरीरधारी (व्यक्ति) में ये सब गुण पाये जा सकते हैं? निश्चित ही नहीं। क्या किसी जड़ वस्तु में ये गुण पाये जा सकते हैं? निश्चित ही नहीं। क्या किसी एक स्थान पर छोटे-से आकार वाली वस्तु के अन्दर समस्त जग समाविष्ट हो सकता है? निश्चित ही नहीं। क्या जन्म और मृत्यु के बन्धन में बन्धी कोई भी वस्तु या पुरुष में इतनी विशालता व सदा एक समान बने रहने का सामर्थ्य हो सकती है? निश्चित ही नहीं, क्योंकि

ईश्वर से दूरी क्यों ?

२५

यह सारे गुण किसी साकार वस्तु में हो ही नहीं सकते। ये सब सिर्फ उस निराकार सर्वशक्तिमान् ईश्वर में ही हैं, अन्यत्र कहीं नहीं, किसी में नहीं।

वह परमात्मा कितना विशाल है, उसकी क्या स्थिति है इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के मन्त्र में परमात्मा का वर्णन कुछ ऐसा किया—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—यजु० १३।४

भावार्थ—हे मनुष्यो ! सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का आधार और जो यह जगत् है, उसका एक मात्र पति परमात्मा इस जगत् की उत्पत्ति से पूर्व भी विद्यमान था। जिसने सूर्य से लेकर पृथ्वी पर्यन्त जगत् को उत्पन्न किया है। उसी परमात्मा की भक्ति करनी चाहिए। अर्थात् जिसमें इस प्रकार का सामर्थ्य हो वहीं परमात्मा है।

वह कितना व्यापक है, उसकी कितनी क्षमता है, वह क्या करता है के सम्बन्ध में देखिए मन्त्र बताता है—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।

योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—यजु० ३२।६

अर्थात्—जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि और भूमि का धारण किया और जिस जगदीश्वर ने सुख को धारण किया है, और जिस ईश्वर ने दुःख रहित मोक्ष को धारण किया है, जो आकाश में सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मान्युक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माणकर्ता और भ्रमण कराता है। हम लोग ऐसे सुखदायक कामना करने योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए सब सामर्थ्य से विशेष भक्ति करें।

उस परमात्मा से हमारे अनेक रिश्ते व सम्बन्ध हैं, जो किसी मनुष्य के दूसरे मनुष्य से नहीं हो सकते। यह वेद मन्त्र में स्पष्ट

किया है—

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्न्धैरयन्त ॥

—यजु० ३२।१०

अर्थात्—हे मनुष्यो! वह परमपिता हम सबका भ्राता के समान सुखदायक, सकल जगत् को उत्पन्न करने वाला, वह सब कामों का पूर्ण करनेहारा, सम्पूर्ण लोक मात्र (जल, थल, नभ) और नाम, स्थान, जन्मों को जानता है, जिस सांसारिक सुख-दुःख से रहित नित्यानन्दयुक्त मोक्ष स्वरूप को धारण करनेहारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होके विद्वान् लोग स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है, हम सभी लोग मिल के सदा उसकी भक्ति किया करें।

परमात्मा का कोई निश्चित स्थान नहीं कि वह अमुक-अमुक स्थान पर मिलेगा वहाँ जाकर ही उसे पाया जा सकता है। परमात्मा यत्र-तत्र सर्वत्र है, तीनों लोकों में उसकी सत्ता है, उसकी व्यापकता, विशालता से सम्बन्धित एक और वेद मन्त्र इस सम्बन्ध में देखें—

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

—अथर्व० १०।७।३२

अर्थात्—भूमि जिसका पैर है और अन्तरिक्ष पेट है, द्युलोक को जिसने अपना सिर बनाया है, उस महान् ब्रह्म को मेरा प्रणाम है।

मन्त्र के अनुसार जिसमें इतनी महानता हो, विराट् हो उसे ही ईश्वर समझना चाहिए।

इस प्रकार सिर्फ एक मात्र परमात्मा ही समस्त जगत् का अधिपति है, स्वामी है। उसकी महानता का वर्णन करते हुए मन्त्र में पुनः बताया है—

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।

—यजु० ४०।१

ईश्वर से दूरी क्यों?

२७

उस सर्वव्यापक परमात्मा के अन्तर्गत ही समस्त जगत् है अथवा उस परमात्मा के द्वारा ही यह जगत् आच्छादित है। वेद के ही इन विचारों के अनुसार आदि जगत् के प्रथम विद्वान् आचार्य ब्रह्मा के पुत्र मनु के विचार भी महत्त्वपूर्ण हैं। उन्होंने ईश्वर के कार्यों व उसकी विशालता के सम्बन्ध में आचार्य मनु ने कहा—

आत्मैव देवताः सर्वाः सर्वमात्मन्यवस्थितम्।

आत्मा हि जनयत्येषां कर्म योगं शरीरिणाम्॥

—आचार्य मनु १२।१९९

अर्थात्—परमेश्वर ही सब व्यवहार का व पूर्वोक्त देवताओं को रखने वाला है, उसी में सब जगत् स्थित है। वही सब मनुष्यों का उपासना योग्य देव है, वही सब जीवों को पाप-पुण्य के फलों का देनेवाला है।

उपरोक्त विचारों से यह स्पष्ट होता है कि वह परमात्मा कितना विशाल है, जो समस्त विश्व, देवताओं का स्वामी है और वही सबका उपास्य है और उसके जैसा कोई और नहीं। ईश्वर के कार्य के सम्बन्ध में आचार्य मनु पुनः कहते हैं—

एषः सर्वाणि भूतानि पंचभिव्याप्य मूर्तिभिः।

जन्मवृद्धिक्षयैर्नित्यं संसारयति चक्रवत्॥

—आचार्य मनु १२।१२४

वह परमात्मा पञ्चमहाभूतों से सब प्राणियों को युक्त करके अर्थात् उनकी उत्पत्ति करके और उनमें व्याप्त रहकर उत्पत्ति, विशुद्धि और विनाश करते हुए, सदा चक्र की तरह संसार को चलाता रहता है। मनु के अनुसार प्रत्येक प्राणि में भी उस परमात्मा का निवास है।

ईश्वर की जिस प्रकार की महानता और अपार शक्ति का वर्णन किया गया, वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य में हो ही नहीं सकती। परमात्मा की विशालता व कार्य जो बताए, ऐसा करनेवाला भी कोई अन्य हो ही नहीं सकता, क्योंकि ईश्वर को समस्त विश्व का निर्माता, रक्षक, पालक व सृष्टि का प्रलय

करने की शक्ति रखनेवाला बताया है। वह सभी जगह है, वह जन्म नहीं लेता, वह मरता नहीं, उसका कोई आकार नहीं, ये सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथ्वी, पहाड़, समुद्र, वनस्पति सभी उसकी कृति है। यह अद्वितीय कार्य उसकी महानता का हमें बोध कराते हैं। इसलिए जो ऐसा है, जिसमें ये सब गुण, कार्यक्षमता हो, बस उसे ही परमात्मा मानना चाहिए। परमात्मा के सम्बन्ध में उसकी विशालता और कार्यों की पूर्ण जानकारी न होने के कारण ही हम उसके समान दूसरों को मान्यता दे देते हैं, वस्तुओं को, मनुष्यों को भी अज्ञानतावश ईश्वर समझ रहे हैं।

ईश्वर कैसा है, साकार है या निराकार ?

परमात्मा को माननेवालों में एक सबसे बड़ा भेद निराकार और साकार का है। तो आइए अब विचार करते हैं कि, वह ईश्वर साकार है या निराकार। आज परमात्मा के सम्बन्ध में इस बात को लेकर आपस में बड़ा विरोध है। विचार न करने के कारण ईश्वर को साकार मानने से हमने वस्तुओं, व्यक्तियों को भी परमात्मा मानकर उनके व ईश्वर के मध्य का अन्तर ही समाप्त कर दिया। परमात्मा की जगह व्यक्ति पूजा व जड़ वस्तुओं की पूजा करने लगे। इसलिए ईश्वर का स्वरूप कैसा है, इस महत्वपूर्ण विषय को समझना आवश्यक है।

ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक विचारधाराएँ प्रचलित हैं। एक विचार के अनुसार ईश्वर साकार है, अर्थात् उसे देख सकते हैं, छू सकते हैं। उसका भौतिक रूप है, वह बार-बार जन्म लेता है, अवतार लेता है, मनुष्य लीला करते हुए हमारे बीच आता है, कभी प्रकट होकर दर्शन दे देता है, कभी-कभी भक्त की रक्षा करने हेतु वह किसी भी रूप में आकर मदद कर जाता है। इस प्रकार की अनेक बातें ईश्वर को साकार बताने के पक्ष में प्रायः सुनने में आती हैं।

दूसरी मान्यता के अनुसार ईश्वर निराकार है—उसकी कोई आकृति नहीं है, कोई रूप नहीं है, उसे इन चर्म चक्षुओं से देखा

ईश्वर से दूरी क्यों ?

२९

नहीं जा सकता, न वह जन्म लेता है, न कभी मरता है, उसकी तो इस आत्मा से अनुभूति की जा सकती है।

तीसरी मान्यता के अनुसार ईश्वर साकार भी है, निराकार भी है। इस तीसरी विचारधारा का एक मुख्य कारण यह कि, ईश्वर के सगुण और निर्गुण होने का अर्थ साकार व निराकार माना जा रहा है। किन्तु यह मान्यता सही नहीं है। सगुण और निर्गुण का अर्थ साकार या निराकार नहीं होता।

प्रश्न—ईश्वर सगुण है या निर्गुण ?

उत्तर—दोनों प्रकार है।

प्रश्न—भला एक मियान में दो तलवार कभी रह सकती हैं। एक पदार्थ में सगुण और निर्गुण कैसे रह सकते हैं।

उत्तर—जैसे जड़ के रूपादि गुण हैं और चेतन के ज्ञानादि गुण जड़ में नहीं है, वैसे चेतन में इच्छा आदि गुण हैं और रूपादि जड़ के गुण नहीं है। इसलिए जो गुणों से रहित वह 'सगुण' और जो गुणों से रहित वह 'निर्गुण' कहाता है। अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से सब पदार्थ सगुण और निर्गुण हैं। कोई भी ऐसा पदार्थ नहीं है कि जिसमें केवल निर्गुणता या केवल सगुणता हो, किन्तु एक ही में सगुणता और निर्गुणता सदा रहती है। वैसे ही परमेश्वर अपने अनन्त ज्ञान बलादि गुणों से सहित होने से सगुण और रूपादि जड़ के तथा द्वेषादि जीव के गुणों से पृथक् होने से परमेश्वर निर्गुण कहाता है।

ईश्वर को आप साकार मानें या निराकार, यह निर्णय तो इन विचारों को पढ़कर आपको करना है। किन्तु ध्यान रहे, जिन्हें हम सम्मान देते हैं, महान् मानते हैं, ऐसे अनेक विद्वानों, सन्तों ने तथा धार्मिक पुस्तकों में, प्रार्थनाओं में एवं सर्वमान्य ईश्वरीय ज्ञान-स्रोत वेद में उसे निराकार ही बताया है। किसी विषय के सम्बन्ध में उसका प्रमाण प्राप्त होने पर बुद्धि से संशय दूर हो जाते हैं, फिर वैसा ही निर्णय लेना चाहिए जो सत्य है, जैसा

सत्य प्रमाण दर्शा रहा है। एक बात का विशेष ध्यान रखें, सत्य ही धर्म है, सत्याचरण ही धर्म है और असत्य मानना सत्य का आचरण न करना अधर्म है। तो आइए देखते हैं, सर्वप्रथम सनातन धर्म का आधार वेद क्या बताते हैं—

न तस्य प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरण्यगर्भऽइत्येष मा मा हिंसीदित्येषा यस्मान्न जातइत्येषः॥

—यजु० ३२।३

अर्थात्—वह परमात्मा कभी देहधारी नहीं हो सकता, जिनका कोई नाप या सीमा नहीं है। जिसकी आज्ञा पालन करना ही उसका स्मरण है। इस मन्त्र में परमात्मा को निराकार बताया है।

कठोपनिषद् का यह मन्त्र निराकार प्रभु का सन्देश देता है।

अशरीरं शरीरिष्वनवस्थेष्ववस्थितम्।

महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति॥

—कठोपनिषद् वल्ली मन्त्र १।२

अर्थात्—वह बिना हाथ-पाँव के संसार को वश करता है, बिना आँख के देखता है, बिना कान के सुनता है। वह निराकार है तथा उसका आत्मा में निवास बताया है।

प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा विजायते।

तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा॥

—यजु० ३१।१९

सम्पूर्ण संसार का स्वामी अजन्मा है, वह सबके भीतर है, नाना जगत् उसी के सामर्थ्य से है। वह परमात्मा अजर-अमर है, उसमें कभी बुढ़ापा प्रकट नहीं होता है। परमात्मा प्राणदाता, ज्ञानदाता है, बुद्धि देनेवाला वही परमात्मा शरीर की रचना करनेवाला ज्ञान का भण्डार है, यह भी वेदों में वर्णित है।

वेद की ही इन बातों का समर्थन संसार के अनेक महापुरुषों, विचारकों, सन्तों, ग्रन्थों ने भी किया है। देखें अन्य विचारधाराएँ क्या कहती हैं। सबसे पहले स्पष्टवादी सन्त कबीर ने ईश्वर को निराकार मानते हुए सन्देश दिया—

पाथर पूजे हरि मिले, तो मैं पूजूँ पहार।

ताते तो चाकी भली, पीस खाए संसार॥

उनका कहना था पत्थर (मूर्ति) पूजने से ही यदि परमात्मा मिले तो मैं पूरा पहाड़ ही पूज लेता हूँ, अर्थात् पत्थर पूजा में परमात्मा प्राप्ति को मानना उचित नहीं।

प्रसिद्ध धार्मिक गुरु नानकदेवजी ने भी ईश्वर के सम्बन्ध में कहा—

“एक्योमकार कर्ता निर्भो अकाल मूरत”

वह एक ओ३म् है, परमात्मा निर्भय, काल से परे अर्थात् सदा रहनेवाला और मूरतहीन अर्थात् निराकार है।

जन-जन के प्रिय सन्त तुलसीदासजी ईश्वर को निराकार बताते हुए कहते हैं—

बिन पग चलेहुं, सुनेहुं बिन काना।

कर बिन कर्म, करहि विधि नाना॥

वह परमात्मा बिना हाथ-पैर के काम करता है, बिना चक्षु के देखता है, बिना कान के सुनता है, बिना शरीर धारण किए सब कुछ करता है अर्थात् निराकार है।

वैदिक वाङ्मय के प्रतिष्ठित एवं सर्वमान्य ग्रन्थ कठोपनिषद् के अनुसार—

अणोरणीयान् महतोमहीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।

तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः॥

अर्थात्—ब्रह्म सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, बड़े से भी बड़ा है। वह हर प्राणी के हृदयाकाश (हृदय) में स्थित है। उस आत्मा की महिमा को बुद्धि के निर्मल होने से निष्काम शोक-रहित प्राणी देखता है।

परमात्मा और आत्मा के मध्य यह भी एक अन्तर है कि जीवात्मा, रूप, रस, गन्ध, स्पर्श शब्द से प्रभावित है और परमात्मा इनसे दूर है। उस पर इसका कोई प्रभाव नहीं होता, क्योंकि वह निराकार है। इस बात को विश्व विख्यात विद्वान्

आदि शंकराचार्यजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना परापूजा में कुछ ऐसे कहा—

निर्लेपस्य कुतो गन्धं पुष्पं निर्वासनस्य च ।

निर्गन्धस्य कुतो धूपं स्वप्रकाशस्य दीपकम् ॥

अर्थात्—जो ईश्वर निर्लेप है उसे कहाँ चन्दन लगाओगे, जो निर्वासन है उसे पुष्प कैसे चढ़ाओगे? जिसे गन्ध का प्रयोजन नहीं धूप उसे कहाँ, और क्यों? और जो स्वप्रकाशवान् है, संसार को प्रकाशित करता है उसे दीपक क्या? इस प्रकार स्वामी शंकराचार्य ने भी निराकार ईश्वर को मानने को कहा।

रामायण के उत्तरकाण्ड में ईश्वर के सम्बन्ध में कहा गया है—

“निराकारमोंकारमुलं तूरीयम् ।”

अर्थात्—निराकार ओंकार की जड़ वाणी इन्द्रियों से परे हैं।

पुनः सन्त तुलसीदासजी कहते हैं—

तुलसी प्रतिमा पूजबो, है गुड़ियन को खेल ।

जा दिन गई सुसराल, दिए पिटारी मेल ॥

स्वामी शंकराचार्य ने पुराण वाक्यम् में भी ईश्वर के सम्बन्ध में बताया—

अधमा प्रतिमा पूजा स्तोत्रजप्यां च मध्यमा ।

उत्तमा निगमा पूजा सोऽहं पूजा महात्मनः ॥

अर्थात्—प्रतिमा पूजा अधम है, स्तोत्रों का जपना मध्य स्थान में है, वेद पूजा सर्वोत्तम है, महात्माओं की पूजा “सोऽहम्” है।

विश्व विख्यात महापण्डित आचार्य चाणक्य ईश्वर को निराकार बताते हुए कहते हैं—

न देवो विद्यते काष्ठे न पाषाणे न मृन्मये ।

अर्थात्—परमदेव महादेव काष्ठ में, पत्थर में, मिट्टी निर्मित मूर्ति में होते हुए भी उनमें उसका साक्षात्कार नहीं होता है।

सच्ची भावना से, परोपकार के कार्यों में सदा रहनेवाले नित्य

ईश्वर से दूरी क्यों ?

३३

आत्मा में योगाङ्गों के अनुष्ठान द्वारा सर्वव्यापक परमात्मा का साक्षात्कार होने लगता है, सर्वत्र उसकी भाव सत्ता की अनुभूति होने लगती है।

सनातनधर्मी हिन्दू जिस पुस्तक को बड़ी श्रद्धा के साथ मानते हैं, उसी श्रीमद्भागवत में भी मूर्ति-पूजा का निषेध किया गया है—

यस्यात्माबुद्धिः कुण्पे त्रिधातुके स्वधी कलत्रादिषु भौम इज्यधीः ।

यत्तीर्थबुद्धिः सलिले न कर्हिचित् जनेष्वभिज्ञेषु स एव गोखरः ॥

—भागवत स्कन्ध १०। अ० ८४। श्लोक १३

अर्थात्—जो मनुष्य शरीर को ही आत्मा मानता है, स्त्री में आत्मबुद्धि रखता है, पृथ्वी से निर्मित आदि को पूज्य मानता है, जल को तीर्थ मानता है, वह पशुओं में नीच गधा है।

जिन शंकराचार्य को संसार के विद्वान् महापुरुषों में गिना जाता है। जिनकी गद्दी की आज भी हिन्दू समाज में पूजा होती है। वे मूर्ति-पूजा के बारे में क्या कहते हैं, इस पर भी विचार करें। स्वामी शंकराचार्य ने अपनी परापूजा नाम की पुस्तक में मूर्ति-पूजा का निषेध किया है—

तीर्थेषु पशुयज्ञेषु काष्ठपाषाण मृन्मये ।

प्रतिमायां मनो येषां ते नरा मूढ चेतसः ॥

अर्थात्—तीर्थ, पशुयज्ञ, लकड़ी, पत्थर और मिट्टी की मूर्तियों में जिनका मन है, वे लोग मूर्ख से भी आगे मूढ़ हैं।

स्वगृहे पायसं त्वक्त्वा भिक्षामिच्छति दुर्मते ।

शिलामृतदारुचित्रेषु देवता बुद्धिकल्पिता ॥

अर्थ—अपने घर में खीर छोड़कर अरे दुर्मत! भिक्षा माँगते फिरता है। पत्थर, मिट्टी और लकड़ियों के चित्र में देवताबुद्धि रखता है। तात्पर्य यह कि ईश्वर तो हृदय में ही है, पर हम उसे बाहर साकार रूप में ढूँढ़ते हैं।

गुरुओं की वाणी “गुरु ग्रन्थ साहब” में भी कहा गया है—

पाथर ले पूजहि मुगध गँवार।

ओहि जा आपि डूबे तुम कहा तरनहार ॥

बुत पूज-पूज हिन्दु मुए, तुरक मुए सिरू नाई।

ओहन जारे, ओहन गाड़े, तेरी गति दुहू न पाये ॥

दादू एक प्रसिद्ध सन्त हुए हैं, उन्होंने भी मूर्ति-पूजा का निषेध किया और उसका विरोध किया। दादू कहते हैं—

पत्थर पीवे धोईके, पत्थर पूजे प्रान।

अन्तकाल पत्थर भये, भव डूबे अज्ञान ॥

सन्त तुकारामजी मूर्ति-पूजा के सम्बन्ध में बड़े दुःख से कहते हैं—

ज्यानें देहासि निर्मिले, जीव त्याने वसरले।

ज्याच्या सत्तेने वर्तती, मूढ त्यानने न जाणती ॥

जैसे गर्भान्ध जन्मती, आपूल्या मातेला नेणती।

तैसे नेणूनी चेतन, पूजिदगड अचेतन ॥

अर्थात्—जिस प्रभु ने कृपा करके जीव के लिए मनुष्य देह को बनाया, जीव ने उस प्रभु को ही विसार दिया। जिस प्रभु की सत्ता से ही प्राणिमात्र अपना-अपना व्यवहार कर रहे हैं, मूढ़ लोग उस प्रभु को नहीं देख सकते। वैसे अज्ञानी लोग चेतन प्रभु को न जानकर अचेतन पत्थर आदि की पूजा करते हैं। आगे फिर सन्त तुकारामजी लिखते हैं—

ज्वाला टाकिने फोड़िती, त्याच्या पुढे हाथ जोड़िती।

ज्यांचा शोच कूप घडविती, त्याला देव ठरवति ॥

पूजा उपचार अर्पिती, अत्यादरे नमस्करिती।

परितो ऐके बोले न पाहे, मूढ त्यांसी मानि ताहे ॥

अर्थात्—ये मूर्तिपूजक मूर्ति बनाते समय इस पत्थर को हथौड़े से गढ़ते तथा फोड़ते हैं, फिर उसी मूर्ति के सामने हाथ जोड़ते हैं। जिस पत्थर को भगवान कहकर उसकी पूजा अर्चना करते हैं, उसके आगे बड़े आदर से हाथ जोड़ते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि वह पत्थर न तो बोलता है और न देखता है, किन्तु मूढ़ लोग उसे ही परमेश्वर मान रहे हैं। आगे कहा—

ईश्वर से दूरी क्यों?

३५

दगड़ावे देव पूर्वी नन्दते जाणु, जनेह अज्ञान झाले जेन्हा।

जनेह अज्ञानी दगड़ा मानिले, गुरुसि त्यागले मूढ़ पढ़े ॥

“हे मनुष्यो! तुम यह निश्चित समझो कि प्राचीन समय में पत्थरों के देव नहीं हुआ करते थे। जो लोग अज्ञानी बन गये, उन अज्ञानी लोगों ने पत्थर का मानना प्रारम्भ कर दिया और अपनी मूर्खता से सच्चे गुरु को त्याग दिया।” पाँच तेन मूर्तियों की पूजा ही सच्ची मूर्ति-पूजा है।

जिन पुराणों को सैकड़ों व्यक्ति बड़ी आस्था से सुनते हैं व पढ़ते हैं, उस शिवपुराण के अनुसार भी ईश्वर निराकार है तथा उसको ज्ञानचक्षु से अनुभूति का विषय बताया। कृपया देखें—

सर्वं तु जगत् सर्वत्र व्याप्य तिष्ठति शाश्वतः।

तथापि क्वपि केनापि व्यक्तमेष न दृश्यते ॥ ४६ ॥

नैवायं चक्षुषा ग्राह्यो नापैरिन्द्रियैरपि।

मनसैव प्रदीप्तेन महानात्मावसीयते ॥ ४७ ॥

तिलेषु वा यथा तैलं दधिवा सर्पिरर्पितम्।

यथापः स्रोतसि व्यासो यथारण्यां हुताशनः ॥ ७४ ॥

एवमेव महात्मानमात्मान्यात्माविलक्षणम्।

सत्येन तपसा चैव नित्ययुक्तोऽनुपश्यति ॥ ७५ ॥

—शि० पु० वायु सं० अ० ८

अर्थात्—वह सब में सर्वत्र व्यापक होकर ठहरा हुआ है, तो भी कहीं किसी से प्रकट रूप में नहीं देखा जाता ॥ ४६ ॥ न वह आँखों से देखा जा सकता है न अन्य इन्द्रियों से ग्रहण किया जा सकता है। अर्थात् आकार रहित है। प्रकाशित मन से उस महान् आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है ॥ ४७ ॥ जैसे तिलों में तेल और दही में घृत छुपा हुआ है, जैसे पानी स्रोत में तथा जैसे अरणी में अग्नि छुपा है ॥ ७४ ॥ वैसे विलक्षण परमात्मा आत्मा में छुपा रहता है। उसको योगी सत्य और तप से नित्य अपने आत्मा में देखता है ॥ ७५ ॥

निर्गुणस्य मुने रूपं न भवेद् दृष्टिगोचरम्।

दृश्यं च नश्वरं यस्मात्तदरूपं दृश्यते कथम् ॥

—देवीभा० ३।७।९

ब्रह्मा बोले—हे मुने! निर्गुण का रूप दृष्टिगोचर नहीं होता, कारण यह है कि दृश्य तो नश्वर है। अरूप का दर्शन कैसे हो सकता है? अर्थात् परमात्मा का साकार रूप में दर्शन होना सम्भव नहीं।

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृतेः परः ।

जन्मवृद्ध्यादिरहित आत्मा सर्वगतोऽव्ययः ॥

—विष्णु० २।१४।२९

जन्म से रहित आत्मा एक, व्यापक, सम, शुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे है, जन्म-वृद्धि आदि से रहित, सर्वव्यापी और अव्यय है।

न ह्यादिमध्यान्तमजस्य यस्य विद्यो वयं सर्वमयस्य धातुः ।

न च स्वरूपं न परं स्वभावं न चैव सारं परमेश्वरस्य ॥

—वि० पु० ४।१।८३

अर्थात्—जिस अजन्मा, सर्वमय, विधाता परमेश्वर का आदि, मध्य, अन्त स्वरूपस्वभाव और सार हम नहीं पाते हैं।

कलामुहूर्तादिमयश्च कालो न यद्विभूतेः परिणामहेतुः ।

अजन्मानाशस्य सैदकमूर्तेरनामरूपस्य सनातनस्य ॥

—वि० पु० ४।१।८४

अर्थात्—कला मुहूर्त आदिमय काल भी जिसकी विभूति के परिणाम का कारण नहीं हो सकता, जिसका जन्म और मरण नहीं होता, जो सनातन और सर्वदा एक रूप है तथा जो नाम-रूप से रहित है।

गन्धवर्णरसैर्हीनः शब्दस्पर्शविवर्जितम् ।

अजातं ध्रुवमक्षय्यं नित्यं स्वात्मन्यस्थितम् ॥ १८ ॥

—वायु० पु० अ० ४

अर्थात्—गन्ध, वर्ण, रस, शब्द, स्पर्श, रूप आदि विषयों से रहित, अजन्मा, नित्य, अविनाशी परमात्मा अपने ही आत्मा में स्थित है।

अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोऽपि शृणोति यः ।

सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरुषः परम् ॥ ८७ ॥

—शिवपुराण वासुसंहिता अ० ४

ईश्वर से दूरी क्यों ?

३७

अर्थात्—बिना आँखों के भी वह देखता है, बिना कानों के भी सुनता है, वह सबको जानता है, उसको पूर्णतः जाननेवाला कोई नहीं है, उसको परम पुरुष कहा जाता है।

कविं पुराणमनुशासितारमणोयामनुस्मरेद्यः ।

सर्वस्य धातारमचिन्त्यरूपमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ॥

अर्थात्—सर्वज्ञ, अनादि, सब पर शासन करनेवाला, सूक्ष्म-से-सूक्ष्म, सबका धारणकर्त्ता अचिन्त्यरूप होते हुए भी ज्ञान द्वारा सूर्य की तरह प्रकाशित और प्रकाशस्वरूप अविद्या-अन्धकार से अति परे परमेश्वर को स्मरण करें।

रामचरितमानस में ईश्वर को निराकार स्वरूप ही कहा है—
बिनु पग चलेहु सुनेहु बिन काना । बिन कर कर्म करे विधि नाना ॥

निराकार ईश्वर के अतिरिक्त ईश्वर माननेवालों के लिए बड़े कड़े शब्दों में कहा—

चौदह भुवन एक पति होई । भूत द्रोह तिष्ठहि नहि कोई ॥
अस प्रभु छांड़ि भजहि जो आना । ते नर पशु बिनु पूंछ विसाना ॥

अर्थात्—सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का एक ही स्वामी है, अतः भूतादि द्रोह ठहर नहीं सकता। ऐसा प्रभु जो सर्वान्तर्यामी है, उसे छोड़कर अन्यत्र देवी-देवताओं, पाषण-मूर्तियों को भजते-पूजते हैं वे मनुष्य बिना पूँछ और बिना सींग का पशु है।

आगे गोस्वामीजी कहते हैं—

चलहिं कुपथ वेदमग छांड़े । कपट कलेवर कलि-मल भांडे ॥

अर्थात्—जो लोग वेदपथ को त्यागकर चलते हैं, वे कुमार्ग पर चल रहे हैं, उनका शरीर कपटी है और पाप एवं विष्ठा के पात्र हैं। ध्यान रहे वेद ने परमात्मा निराकार होने का सन्देश दिया है।

उपनिषद् स्थापित व सनातन धर्म का सर्वमान्य ग्रन्थ है, उसमें बताया गया है—

न सन्दृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा मनीषा मनसाधिवृत्तो तीर्थानि य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ॥

—कठोपनिषद् २।३।९

अर्थात्—इसका रूप दृष्टि में नहीं आता, अतः इसको कोई भी आँख से देख नहीं सकता, चक्षुरादि इन्द्रियों से नहीं जान सकता, हाँ. हृदय, बुद्धि तथा मन से वह जाना जा सकता है, स्वच्छ निर्मल हृदय, अन्तर्मुखी सात्विक बुद्धि और मननशील मन से वह समझ में आ सकता है, अनुभव किया जा सकता है। जो इस प्रकार इसको जान जाते हैं, वे फिर मुक्त हो जाते हैं।

वास्तविकता यही है कि सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी वह ईश्वर निराकार है, यदि साकार होता तो किसी स्थान विशेष तक सीमित होकर रह जाता, साकार होने से घट-घट वासी कैसे हो सकता था ? क्या कोई साकार वस्तु हृदय में रह सकती है ? बाल बराबर वस्तु भी हृदय में आ जावे तो उसको ऑपरेशन से हटाना पड़ता है। इसलिए सब जगह तो निराकार ब्रह्म ही रहता है, साकार नहीं। संसार के सबसे पुराने ग्रन्थ वेद और इतिहास में वाल्मीकीय-रामायण है, इसमें किसी में भी मूर्ति का या ईश्वर के साकार रूप का वर्णन नहीं है। मूर्ति-पूजा तो जैन व बौद्ध काल से प्रारम्भ हुई। इसके पूर्व मूर्ति का कोई इतिहास नहीं मिलता।

उपर्युक्त उदाहरणों से ईश्वर निराकार है यह स्पष्ट हुआ है, किन्तु वर्षों से हमारे विचारों में ईश्वर साकार होने की भावना से जुड़ी हुई मान्यता इतने विद्वानों, ग्रन्थों तथा ईश्वरीय ज्ञान वेद द्वारा बताई गई सत्यता को भी एकाएक स्वीकार नहीं करने देगी, यह स्वाभाविक है।

थोड़ा ध्यान दें तो, निराकार को भी देखा जा सकता है। अनेक ऐसी बातें हमारे जीवन के साथ जुड़ी हैं, जो हैं तो सही, पर आँखों से दिखाई नहीं देती हैं। परमात्मा के द्वारा निर्मित मानव चोला बड़ा वैज्ञानिक और अत्यन्त आश्चर्यजनक है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अलग-अलग कार्य व ज्ञान की खोज करती हैं, उनके विषय की जानकारी वे ही रखती हैं। ज्ञानेन्द्रियों के रूप में इसमें

ईश्वर से दूरी क्यों?

३९

अलग-अलग यन्त्र अलग-अलग जानकारी के लिए हैं, जिन्हें देखकर जाँच करने का काम ज्ञानेन्द्रियों का है वे ही देखती हैं।

हम परमात्मा को आँखों से देखना चाहते हैं, उसके निराकार होने में शंका करते हैं और उसे चर्म चक्षुओं से ही देखकर विश्वास करना चाहते हैं। किन्तु परमात्मा को देखने की आँख तो ज्ञानरूपी आँख हैं, ज्ञानचक्षु हैं। यदि किसी से पूछा जावे कि देखता कौन है? तो उत्तर होगा आँख देखती है। किन्तु ध्यान देवें केवल आँख ही नहीं देखती है, हमारी अन्य ज्ञानेन्द्रियाँ भी देखती हैं। जैसे किसी वस्तु के गरम अथवा ठण्डे होने की जानकारी आँखों से देखकर नहीं की जा सकती है वह त्वचा देखती है। किसी पदार्थ के रस या स्वाद का खट्टा-मीठा, तीखा-फीका, कड़वा-कसैला देखने का कार्य आँख देखकर नहीं कर सकती है, वह तो रसना देखती है। कौन बोल रहा है, रेडियो में किस गायक की आवाज है, क्या बज रहा है, पीछे से कौन पुकार रहा है, यह आँख नहीं देख सकती, यह कानों का विषय है, कान देखते हैं। किसी वस्तु में सुगन्ध है या दुर्गन्ध है इसकी जानकारी आँखों से देखकर नहीं लगाई जा सकती है, यह तो नाक देखती है। जरा विचार करें—सर्दी-गर्मी, खट्टा-मीठा, आवाज, सुगन्ध-दुर्गन्ध ये सब हैं, किन्तु आँखों से इनकी कोई जानकारी नहीं लग सकती, आँखें इन्हें नहीं देख सकती फिर इसका अर्थ यह तो नहीं कि इनका कोई अस्तित्व ही नहीं है?

अस्तित्व तो है, किन्तु साकार न होने से आँखों का विषय नहीं है। इन्हें सारी इन्द्रियाँ अपने ज्ञान से अनुभव कर देखती हैं, और परिणाम बताती है। आँख तो भौतिक या जिसका रूप है, वही वस्तु देख सकती है। रेडियो टेलीविजन की तरंगें आँखों से नहीं दिखाई देती, किन्तु आवाज उनका आभास कराती है। विद्युत् दिखाई नहीं देती किन्तु उसकी शक्ति से चलते यन्त्र, जलती हुई लाईट उसके होने का परिचय देती है। इसी प्रकार ईश्वर को देखने के लिए ज्ञानचक्षु की आवश्यकता होती है, उसकी विशाल सृष्टि को देखकर उसकी अनुपम रचना व दया

को देखकर ही उसका अनुभव किया जा सकता है। इसलिए ईश्वर दर्शन इन आँखों का नहीं, उसके कार्यों की, गुणों की, उसकी दया की अनुभूति का विषय है, जो ज्ञानचक्षु से देखा जा सकता है।

इन सब बातों पर चर्चा करने के पश्चात् स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उत्पन्न होगा कि हम ईश्वर की अनुभूति कैसे करें?

प्रिय पाठकवृन्द! आपके इस प्रश्न का बड़ा सरल व सीधा-सीधा समाधान करने का प्रयास किया जा रहा है। किसी भी मान्यता का आधार केवल प्रत्यक्ष दर्शन ही नहीं है, शास्त्र, इतिहास, अवशेष, किंवदंतियाँ, पारम्परिक या वंशानुगत क्रम व सही अनुमान भी हो सकता है।

भगवान राम और भगवान कृष्ण को, अपने पूर्वजों को हमने आँखों से तो नहीं देखा किन्तु इतिहास व पारिवारिक ज्ञान हमें उनके होने का प्रमाण देता है। इसलिए हमने विश्वास कर उनके होने को स्वीकार किया, यह अनुमान का कारण है।

हमारे घर में बैठे-बैठे हम बिजली का उपयोग करते हैं, हमारे घर में बिजली बाहर स्ट्रीट पोल से प्राप्त हुई, पोल को स्थानीय बिजली घर से और बिजली घर को बिजली विद्युत् संग्रहालय से और फिर उस स्थान से जोड़ा गया जहाँ से बिजली का उत्पादन हो रहा है।

इतनी प्रक्रियाएँ चल रही हैं और इसे करते हुए आप किसी व्यक्ति को नहीं देख पा रहे हैं। किन्तु न देखते हुए भी आप यह अनुमान के आधार पर पूर्ण विश्वास करते हैं और मानते ही हैं कि कई व्यक्ति इस कार्य को कर रहे हैं।

आप हवाई जहाज या ट्रेन में सफर कर रहे हैं, आप प्रत्यक्ष रूप से नहीं देख पा रहे हैं कि इन्हें कोई चला रहा है, या कैसे ये चलाये जा रहे हैं। किन्तु अनुमान के आधार पर यह पक्का विश्वास करते हैं कि इसे कोई पायलेट या रेल ड्राइवर अवश्य ही चला रहा है।

एक और उदाहरण जो आपके निराकार परमेश्वर के प्रति विश्वास को बढ़ावेगा, वह प्रस्तुत है।

कुछ व्यक्ति बैठे हैं, और वहीं एक शव रखा है। कुछ देर पूर्व जिसका शव है, वह व्यक्ति जीवित था। जीवित और मृत का लक्षण पूछे तो बताना होगा कि जीवित वह है, जो चेतन है, उसमें क्रिया है, वह बोल सकता है। और अचेतन, मृत या शव वह है, जिसे मिट्टी कहा जा रहा है, उसमें कोई हरकत नहीं है। दोनों को अर्थात् जीवित व मृतक के शरीर को हम देख रहे हैं, दोनों में अन्तर है। जब अन्तर का कारण पूछा तो पता चला एक में आत्मा है और एक में आत्मा अब नहीं है। आत्मा थी तब शरीर में गति थी, सब कुछ चल रहा था आत्मा के जाते ही सब कुछ थम गया है।

वहां बैठे व्यक्तियों से किसी ने प्रश्न किया ये आत्मा शरीर से निकलकर किधर गई, कब गई, कहाँ से गई, कैसी थी? उत्तर मिला उसे तो हम कोई भी देख नहीं पाये? मृतक के पास हम सब कब से बैठे हैं परन्तु हममें से किसी ने उसे शरीर से निकलते हुए नहीं देखा। निश्चित ही उसे कोई नहीं देख सकता, उसे देखा नहीं जा सकता, छुआ नहीं जा सकता, नष्ट नहीं किया जा सकता है, क्योंकि वह निराकार है।

यह कितनी विचित्र बात है जिसे देख नहीं सकते, जिसे छू नहीं सकते, जो निराकार है, किन्तु उसकी शक्ति से, उसके कारण से ही यह ६ फुट का लम्बा-चौड़ा शरीर सब कार्य करने में सक्षम है, वही निराकार इसे गति दे रहा था।

पाठकवृन्द! विचार करें जब निराकार आत्मा इस पिण्ड को चला सकती है, तो वह परम आत्मा (परमात्मा) निराकार ब्रह्म जो सर्वशक्तिमान् है वह इस ब्रह्माण्ड को क्यों नहीं चला सकता?

ये सूर्य, चन्द्रमा, तारे, हवा, पानी, प्राण, प्रकृति का संचालन व नियन्त्रण सब कौन कर रहा है? इन्हें गति कौन देता है?

इनके और हमारे बीच एक निश्चित दूरी किसने बनाए रखी है? इस पृथ्वी को गति कौन दे रहा है?

यहाँ यह मानना होगा, जिस प्रकार उस बिजलीघर के अदृश्य रूप से कार्य करनेवालों को अज्ञात पायलेट ड्राइवर और आत्मा को मानते हैं, ठीक उसी प्रकार परमात्मा की अनुभूति करके उस परमात्मा के होने का विश्वास करना होगा। उसकी अद्भुत कृति ही उसका दर्शन कराती है। हम परमात्मा का दर्शन उसकी कृति, उसकी व्यवस्था, उसकी शक्ति, उसकी अनन्त कृपा को समझकर, उसे अनुभव करके कर सकते हैं।

परमात्मा ने संसार के प्राणियों को चर्मचक्षु प्रदान किए हैं, जिनसे वह अपनी जीवन प्रणाली चलाते हैं। किन्तु मनुष्य को चर्मचक्षु के साथ-साथ ज्ञानचक्षु भी दिए हैं। चर्मचक्षु बाहरी जगत् को और ज्ञानचक्षु अन्दर देखता है। मनुष्य चर्मचक्षु खोलकर भौतिक पदार्थों को बाहर देखता है, और जब ये चर्मचक्षु बन्द कर लेता है, तब वह आन्तरिक चक्षु से अन्दर देखता है यही प्रभुदर्शन है। इसलिए परमात्मा की स्तुति करनेवाला कोई भी हो वह आँखें बन्द कर अन्दर बैठे प्यारे प्रभु को देखता है। यह ईश्वरीय ज्ञान हमें स्वतः मिला है।

हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है चिन्तन और स्वाध्याय से दूरी। हम क्या कर रहे हैं, क्या बोल रहे हैं, उसका क्या अर्थ है, इस पर ध्यान नहीं जाता है। सिर्फ मशीन की तरह बोल दिया, आसन पर बैठ गए, हाथ जोड़ लिए, बस हो गया। मन तो परिवार, सम्पत्ति, दुकान पर, नौकरी पर है, परन्तु बस शारीरिक रूप से कार्य करना ही उसकी प्रार्थना करना मान लिया है।

जबकि परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना, उपासना का महत्त्व तब होगा उसके प्रति हमारे द्वारा किए जा रहे प्रत्येक व्यवहार व कार्य का ज्ञान हमें होना चाहिए, अन्यथा मात्र कर्म का निर्वाह औपचारिकता ही होगी। जैसे किसी गधे पर चन्दन की लकड़ी

ईश्वर से दूरी क्यों?

४३

लाद दो, या ईंट, पत्थर, मिट्टी उसके लिए दोनों का अर्थ केवल भार ढोना ही है। चन्दन के महत्त्व से उसका कोई प्रयोजन नहीं होता।

जरा इस पर ध्यान दीजिए, हमारे घरों में कई पीढ़ियों से एक आरती जिसे हम बड़ी श्रद्धा से गाते हैं, वह 'ओ३म् जय जगदीश हरे' गायी जाती है। हम उसे बड़े भाव विभोर होकर भक्ति भाव से तल्लीन होकर गाते हैं। किन्तु जो गाते हैं उसके विपरीत आचरण करते हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में जिन बातों को वेद कहता है, जिन्हें आर्यसमाज मानता है उन विचारों का इस आरती की एक पंक्ति में ही उल्लेख है, इस आरती में आप रोज गाते हैं, पर उसे मानते नहीं हैं। उस आरती की पंक्ति है—“तुम हो एक अगोचर, सबके प्राणपति” अर्थात् हे ईश्वर! तुम एक हो, अगोचर हो (अ=नहीं, गो का अर्थ इन्द्रियाँ, चर=देख सकती) जिसको इन्द्रियाँ नहीं देख सकती हैं, अर्थात् निराकार हो और सब प्राणों के स्वामी हो।

इस आरती में परमात्मा के निराकार होने का स्पष्ट वर्णन है, हम नित्य बोल भी रहे हैं, परन्तु हम वैसा नहीं मानते हैं। बोलना कुछ, और करना कुछ, इस व्यवहार को आप क्या कहेंगे? निर्णय स्वयं करें। जो व्यक्ति सोचे कुछ, बोले कुछ, करे कुछ वे मनुष्य नहीं होते वे तो असुर हैं, ऐसा उन्हें परमात्मा ने अपने उपदेश में कहा है—

असुर्या नाम ते लोकाऽअन्धेन तमसावृताः ।

ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥

—यजु० ४०।३

भावार्थ—वे ही मनुष्य असुर, दैत्य, राक्षस, पिशाच आदि हैं जो आत्मा में कुछ, वाणी में कुछ और कर्म में कुछ अर्थात् जिनके मन, कर्म व वाणी में अन्तर हैं, वे दुःख के सागर से पार नहीं हो सकते।

जिनकी आत्मा, वाणी, कर्म में निष्कपटता एकरूपता है, वे

सौभाग्यशाली जन ही इस लोक और परलोक का सुख भोग सकते हैं।

विचार करें—“ओ३म् जय जगदीश हरे” की आरती को क्या हम जैसा बोलते हैं, क्या वैसा ही मान रहे हैं? गलती का एहसास कभी भी हो, उसे सुधारना बुद्धिमानी है।

यजुर्वेद का आदेश है—जरा ध्यान से पढ़ें?

अन्धन्तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूयऽइव ते तमो यऽउ विद्यायाश्चरताः॥

—यजु० ४०।१२

अर्थात्—जो अनुभूति अर्थात् कारण प्रकृति की, ब्रह्म के स्थान पर उपासना करते हैं, वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं। जो कार्य प्रकृति अर्थात् चेतन परमेश्वर के स्थान पर पृथ्वी, वृक्ष, पाषाण आदि जड़ की उपासना करते हैं वे उस अन्धकार से भी अधिक महान् दुःखरूपी अन्धकार में प्रवेश करके घोर नरक में गिरकर महा क्लेश भोगते हैं। अतः आत्मतत्त्व की उन्नति के लिए शुभ कर्मों सहित अभ्यास, वैराग्य द्वारा सदैव ज्ञानपूर्वक उपासना करने से ही पूर्ण सुख की प्राप्ति सम्भव है।

आज परमात्मा को साकार या किसी स्थानविशेष पर मानने की धारणा के कारण पाप, अत्याचार, अधर्म बढ़ रहा है। उसे सर्वव्यापक मानते तो मनुष्य पर उसका नियन्त्रण रहता। जैसे किसी कोतवाल या राजा, न्यायाधीश के सामने कोई चोर चोरी नहीं कर सकता, क्योंकि उनसे उसे भय होता है। किन्तु चोरी के स्थान से यदि न्यायाधीश या कोतवाल व राजा दूर हों तो चोर निर्भय होकर चोरी कर लेता है। इसी प्रकार यदि ईश्वर सर्वव्यापक माने और यह जानकारी रहे कि वह हर वक्त, हर स्थान पर हमारे हर कार्य को देख रहा है तो ऐसा विश्वास होने पर कोई गलत कार्य करने से पहले डरेगा। किन्तु परमात्मा मन्दिर में है, चौथे या सातवें आसमान पर है, तीर्थों में है, तो व्यक्ति स्वच्छन्द हो गया, उसका डर समाप्त हो गया। इस कारण पाप, अत्याचार,

ईश्वर से दूरी क्यों ?

४५

अन्याय बढ़ने का यह भी एक कारण है।

प्रिय पाठकगण! परमात्मा निराकार है यह हमने पढ़ा, अनेक विद्वानों, शास्त्रों ने भी यह बताया है। इसलिए हमें निराकार ईश्वर को मानकर उसकी उपासना करनी चाहिए।

कोरी श्रद्धा के भाव से धर्म व ईश्वर के नाम पर बिना सोचे-विचारे मात्र भावनाओं में बहकर जब पुरानी काल्पनिक मान्यताओं के आधार पर यदि विश्वास करते हैं तब कभी-कभी हम उस श्रद्धा के कारण वह मान बैठते हैं जो वास्तव में वैसा है ही नहीं। जिसका कोई परिणाम नहीं होता है, यथार्थता से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, केवल भ्रम में, अज्ञान में, भावनाओं में ऐसी बातों से बन्ध जाते हैं।

योगिराज श्री कृष्ण ने श्रद्धा की तीन स्थितियाँ कुछ ऐसे बताई हैं—

त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा।

सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥

—गीता १७।२

जो श्रद्धा ज्ञान पूर्वक की जावे, जो सत्य पर आधारित हो वह सात्त्विक, जो स्वार्थ या अपने मतलब से हो वह राजसी श्रद्धा तथा अज्ञानपूर्वक अथवा सुनी-सुनाई या सत्य को सोचे बिना होती है, वह तामसी श्रद्धा है। एक उदाहरण से यह विचार और अधिक स्पष्ट हो जावेगा।

एक ऊँटों का व्यापारी कुछ ऊँटों को लेकर बेचने हेतु दूसरे प्रदेश की ओर निकल पड़ा। रास्ते में रात्रि हो गई। उसने किसी स्थान पर रुकने का विचार किया और धर्मशाला के सराय के मालिक से मिला। धर्मशाला के सामने काफी बड़ा मैदान था उसने विचार किया कि ऊँट बाहर मैदान में बाँध दूँगा और मैं कमरे में सो जाऊँगा।

व्यापारी ने सराय के मालिक से रात में ठहरने की अनुमति ली और ऊँट बाँधने लगा। किन्तु एक ऊँट बाँधने का साधन

उसके पास नहीं था, एक कीला और रस्सी उसके पास कम था। उसने सोचा यदि ऊँट को बाँधा नहीं तो कहीं चला जावेगा और नुकसान हो जावेगा, इस कारण वह ऊँट की रखवाली के लिए सराय के बाहर ओटले पर आकर बैठ गया। रात्रि में सराय का मालिक किसी कार्य से उठा तो उसने देखा आधी रात के बाद भी व्यापारी बाहर बैठा है। उसने इस प्रकार बैठने का कारण पूछा, तो व्यापारी ने बताया, एक कीला और रस्सी कम होने से एक ऊँट को न बाँधने का कारण बताया।

सराय के मालिक ने कहा, अरे भाई! उस ऊँट को भी बाँध दे। व्यापारी ने पूछा कैसे? सराय के मालिक बोला—जैसे तूने दूसरे ऊँटों को बाँधा है, वैसे मात्र इसके सामने थोड़ा अभिनय कर दे, बस फिर सो जा।

व्यापारी उठा उसने अपने लोहे का बड़ा-सा घन (हथौड़ा) उठाया और ऊँट के सामने जाकर जमीन पर मारने लगा, जैसे वह कीला गाड़ रहा है। फिर उसने ऊँट के पैर को पकड़ा उसके आसपास हाथ घुमाया मानो जैसे पैर में रस्सी बाँध रहा है, फिर जमीन पर जहाँ उसने हथौड़े की चोट लगाई थी वहाँ आसपास हाथ घुमाया मानो कीले में रस्सी बाँध रहा है। इतना करने के बाद जाकर सो गया। सुबह उठा देखा, आश्चर्य है ऊँट वहीं खड़ा है जहाँ उसे रात्रि में खड़ा किया था।

व्यापारी को आगे जाना था, उसने सारे ऊँटों को जिन्हें बाँधा था खोल दिया और चल दिया किन्तु एक ऊँट जिसे बाँधने का अभिनय किया था, वास्तव में जिसे बाँधा नहीं था, उसे नहीं खोला, उसे खोलने का प्रश्न ही नहीं था, परन्तु वह अपनी जगह ही खड़ा था। सराय का मालिक देख रहा था उसने व्यापारी से कहा—अरे भाई उसे भी खोल, तभी वह आगे बढ़ेगा। व्यापारी ने कहा इसे मैंने बाँधा ही कब था, जो इसे खोलूँ। सराय मालिक ने कहा जैसा अभिनय करके तूने इसे बाँधा था वैसा ही अभिनय करके इसे खोल। व्यापारी ने वैसा ही किया, इसके बाद ऊँट तुरन्त दूसरे ऊँटों की ओर चल पड़ा।

ईश्वर से दूरी क्यों?

४७

देखिए, ऊँट मात्र भ्रम से बँधा था, न रस्सी थी न कीला परन्तु अन्धश्रद्धा, काल्पनिक मान्यता ने उसे बाँध दिया था। हमारी स्थिति भी तामसी श्रद्धा के समान ही है, ईश्वर के सम्बन्ध में भी हम जाने कैसी-कैसी काल्पनिक मान्यताओं से बँधे हुए हैं। आज समाज के सामने हजारों ऐसी ही मान्यताएँ हैं जिसका वास्तव में कोई अस्तित्व नहीं किन्तु फिर भी कोरी कल्पनाओं में बँधे हैं। हमने कभी उन पर विचार करके सोचा ही नहीं।

मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में अनेक महापुरुषों, विद्वानों के मत हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

पं० जवाहरलाल ने अपनी “हिन्दुस्तान की कहानी” में उपर्युक्त विचारों की सम्पुष्टि की है। वह इस पुस्तक के ‘भारत और यूनान’ शीर्षक अध्याय में पृष्ठ १७२ पर लिखते हैं।

“यह एक मनोरंजक विचार है कि वैदिक भारत मूर्तिपूजा तथा प्रतिमा पूजा का विरोधी था। उस वैदिक काल में देव मूर्तियों के किसी प्रकार के मन्दिर नहीं थे। कदाचित् पीछे सम्प्रदायों में मूर्तिपूजा के कुछ चिह्न पाये जाते हैं, किन्तु यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि उसका इस देश में विश्वस्त प्रभाव नहीं था। प्रारम्भिक बौद्धधर्म उसका घोर विरोधी था और बुद्ध की प्रतिमा तथा मूर्तिनिर्माण के विरुद्ध विशेष आज्ञाएँ थी। पुरानी मूर्तिकला का अफगानिस्तान और सीमान्त प्रदेश के चारों ओर अधिक प्रभाव था और वह शनैः-शनैः यहाँ भी प्रविष्ट हो गया। किन्तु इस पर भी प्रारम्भ में बुद्ध की मूर्ति न बनाकर “अपोलो” (यूनान का एक देवता) जैसी बोधीसत्त्वों की ही मूर्तियाँ बनाई गई, जो बुद्ध के पूर्व अवतार माने जाते थे। पीछे से स्वयं बुद्ध की मूर्तियाँ निर्माण होने लगी। हिन्दू धर्म के कुछ सम्प्रदायों में भी उनका अनुकरण किया गया, किन्तु वैदिक धर्म निरन्तर इस प्रभाव से मुक्त रहा। फारसी तथा उर्दू भाषा में प्रतिमा अथवा मूर्ति के लिए अब भी बुत शब्द प्रयुक्त होता है, जो “बुद्ध” का रूपान्तर है।” —पं० जवाहरलाल नेहरू

बंगाल के सुप्रसिद्ध सुधारक राजा राममोहन राय ने इस नई आपत्ति का अनुभव किया और “ब्रह्म समाज” की स्थापना की। उन्होंने हिन्दू जाति को मूर्तिपूजा के अन्धविश्वास से निकालने का भरसक प्रयत्न किया। राजा राममोहन राय अरबी, अंग्रेजी और संस्कृत के अच्छे पण्डित थे। उन्होंने अपने लेखों में मूर्तिपूजा का विद्वत्तापूर्ण एवं युक्तियुक्त खण्डन किया है। उनके तत्सम्बन्धी अनेक उदाहरण हैं उनमें से एक पाठकों के अवलोकनार्थ उपस्थित करते हैं—राजा राममोहन राय अपनी आत्मकथा में एक स्थान पर लिखते हैं—

“मैंने अपने समस्त विवादों में ब्राह्मण-धर्म का विरोध नहीं किया, अपितु उसके विपरीत यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि ब्राह्मण-धर्म की मूर्तिपूजा, उसके पूर्वजों, प्राचीन धर्मग्रन्थों एवं उन प्रमाणों के विपरीत हैं जिन्हें वे अपने लिए मान्य और आदरणीय समझते हैं।”

♦ बहुत से विद्वान्, ब्राह्मण मूर्तिपूजा के थोथेपन से भली-भाँति परिचय होने पर भी उसी के गीत गाते हैं, क्योंकि मूर्तिपूजा सम्बन्धी कार्य एवं उत्सव ब्राह्मणों को प्रत्येक सुविधा एवं धन देते हैं और उनके भक्त भी आँखें बन्द करके विश्वास कर लेते हैं।

—राजा राममोहन राय

♦ जिसने मन्दिर बनवाया पैसे बरबाद किए हैं। गाँव के भोले-भाले लोगों को गलत रास्ता दिखाया। फोटो रखने को मैं अब तक बर्दास्त करता आया हूँ, उसकी वजह से मैं प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष किसी भी रूप में मूर्तिपूजा का बढ़ावा नहीं दे सकता। मेरे राम दशरथ के पुत्र, सीता के पति नहीं और यह मूर्तिवाले राम भी नहीं हो सकते।

—महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी का यह लेख भी महत्वपूर्ण है जो निराकार ईश्वर का सन्देश देता है। ईश्वर निश्चित रूप से एक है। वह अगम और अगोचर है। मनुष्यों की अधिक संख्या उसको नहीं जान सकी। वह सर्वव्यापक है, नेत्रों के बिना देखता है और

ईश्वर से दूरी क्यों?

४९

कानों के बिना सुनता है। निराकार, निरवयव है। वह अजन्मा है। उसका कोई पिता, माता या पुत्र नहीं है, तो भी लोग उसे पिता, माता, स्त्री और पुत्र बनाकर पूजते हैं। तथापि वह उसमें से कोई वस्तु नहीं है।

“हम राम के गुण गाते हैं, वह वाल्मीकि के राम नहीं, तुलसी रामायण के भी श्री राम नहीं है। असह्य दुःख से दुःखी मनुष्य से मैं कहता हूँ कि ‘राम’ नाम लो। लेकिन यह राम तो दशरथ के पुत्र, सीता के पति नहीं हैं, यह तो देहधारी नहीं हो सकते, जो हमारे हृदय में बसते हैं, वह राम देहधारी नहीं हो सकते हैं। अर्थात्—वह एक निराकार ईश्वर है।”

महात्मा गाँधी—(यंग इण्डिया २५ सितम्बर सन् १९२४ ई०)

(प्रताप, लाहौर, १० अप्रैल सन् १९२८ ई०)

१. वेद में प्रतिमा-पूजन का कहीं भी विधान नहीं। मूर्तिपूजा सनातन नहीं, काल्पनिक विचारधारा का परिणाम है। परमेश्वर नित्य, निराकार तथा सर्वव्यापक है। जो निराकार है उसे साकार मानना उसकी निन्दा है।

—महर्षि दयानन्द

वैदिक युग में प्रतिमा-पूजन का अस्तित्व नहीं था। यही धारणा थी कि ईश्वर सर्वव्यापक है, बुद्ध की प्रतिमा गढ़कर इसकी उत्पत्ति हुई।—स्वामी विवेकानन्द से वार्ता, पृष्ठ ११०

♦ मूर्तिपूजा का जन्म (भारत में) महात्मा बुद्ध के देहावसान के बाद ही साबित होता है।—चीनी यात्री फाहियान व्हेनसांग

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन में लगभग ३५०० पुस्तकों व ग्रन्थों का अध्ययन किया, सच्चे ईश्वर की खोज में समस्त जीवन अर्पित कर दिया। अनेक मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों को भी पढ़ा-समझा, ईश्वरीय ज्ञान वेद को पढ़ा। इन सबको पढ़ने के पश्चात् ईश्वर के सम्बन्ध में जो कुछ बताया वह इस प्रकार है—

“ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान, न्यायकारी, सर्वान्तर्यामी, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और

सृष्टिकर्ता है। उसी की उपासना करनी चाहिए।”

कृपया ध्यान दीजिए कुरआन व बाइबिल में भी जो व्याख्या है, लगभग ऐसी ही है।

इन विचारों को महर्षि दयानन्द के पूर्व अनेक विद्वानों ने, विचारकों ने, ग्रन्थों ने भी बताया है। इसलिए ईश्वर अद्वितीय है, पूर्ण है, निराकार है यही मानकर उसकी स्तुति, प्रार्थना करनी चाहिए।

मोहम्मद गोरी जब सोमनाथ मन्दिर तोड़ने के लिए वहाँ आया और मूर्ति तोड़ने लगा, इस दृश्य को ‘शिवराज विजयम्’ नामक पुस्तक में अम्बिकादत्त व्यास, जिन्होंने स्वामी दयानन्दजी से संस्कृत में शास्त्रार्थ किया था, उन्होंने लिखा है कि पुजारी कहने लगे—

अकिंचित्कराम् जडाम् इमाम् प्रतिमाम् त्यज ।

अर्थात्—ये जड़ मूर्ति तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकती, इसलिए तुम इसे तो छोड़ दो।

प्रिय पाठकवृन्द! उपर्युक्त उदाहरणों से ईश्वर निराकार है यह स्पष्ट हुआ है। अनेक बातें हमारे जीवन के साथ जुड़ी हैं, जो हैं तो सही, किन्तु आँखों से दिखाई नहीं देती। जो बातें आँखों से स्पष्ट नहीं होती वे अनुभूति से स्पष्ट होती हैं। परमात्मा सर्वव्यापक है, वह सभी जगह विद्यमान है, घट-घट वासी है इसलिए आपके व उसके मध्य स्थान की भी दूरी नहीं है। वह सदा से है सदा रहेगा इसलिए समय की भी उससे दूरी नहीं है। यदि फिर भी उसके और हमारे बीच दूरी है तो वह ज्ञान की दूरी है, क्योंकि वह जैसा है वैसा हम समझ ही नहीं पाए और बिना जाने उसे अज्ञानतावश ढूँढ़ कहीं स्थान-विशेष पर रहे हैं। यही उसके व हमारे मध्य दूरी का कारण है। उसको अपनी आत्मा में ही ढूँढ़िए, उसकी वहीं उपासना कीजिए, वहीं वह आपको मिलेगा। वह आँखों का विषय नहीं है, केवल अनुभूति का विषय है, उसे अनुभव कीजिए।

ईश्वर से दूरी क्यों?

५१

सुधी पाठकवृन्द! मैं मानता हूँ कि साकार निराकार का यह प्रश्न आज ईश्वर के मध्य बड़ा अहम प्रश्न है। दुनिया के तमाम व्यक्ति किसी ना किसी रूप में साकार परमात्मा में आस्था रखते हैं। किन्तु करोड़ों व्यक्ति ऐसे भी हैं, जो निराकार परमात्मा को मानते हुए धार्मिक व ईश्वर भक्त कहलाते हैं। जैसा कि इसी लेख में ऊपर दर्शाया कि हम सत्य को समझकर भी कभी-कभी मानसिक कमजोरी, अज्ञानता, पुरानी विचारधारा या अज्ञात भय के कारण उसे अपनाते नहीं हैं। यह सबसे बड़ी कमजोरी व भीरूपन है, इसे आत्महत्या कहना ही उचित होगा। जिस कार्य की सत्यता को हमारी आत्मा स्वीकार तो करती है, किन्तु हम उसे मानते नहीं तो इसे क्या कहा जायेगा? इसके लिए एक ही शब्द उचित है (स्थूल रूप में) आत्मा का हनन अर्थात् आत्महत्या। (ये के चात्महनो जनाः, यजु० ४०।३)।

दूसरों शब्दों में यह गुलामी है, गुलामी किसी अन्य के द्वारा या स्वयं के आचरण से हो दोनों ही गुलामी कही जावेगी। मन के गुलाम बनकर किसी सत्य बात को न मानना भी गुलामी का ही प्रतीक है।

परमात्मा को माने या उसके स्थान पर किसी अन्य को इस सम्बन्ध में तीन प्रश्न यहाँ प्रस्तुत किए जा रहे हैं। जिसका उत्तर आप स्वयं सोचें, जो सत्य हो वही सोचो। जो सत्य है उसे मानना ही धर्म है, और जो सत्य के विपरीत है उसे मानना अधर्म। इसलिए आप धर्म के अनुयायी बनें, सत्य स्वीकार करें, यही आपके लिए श्रेष्ठ व हितकर है, यही परमात्मा की सही उपासना, प्रार्थना, भक्ति है।

प्रश्न १—हम किसी मूल या असल के स्थान पर उसकी दूसरी प्रति, प्रतिबिम्ब या उसके डुप्लीकेट को कब मान्यता देते हैं?

उत्तर—जब असल हमें उपलब्ध ना हो तब उसकी नकल या उसकी प्रति को मान्यता देते हैं।

पाठकवृन्द! उपरोक्त प्रश्न का उत्तर जो दिया है वह आपके विचारों से भी उचित और सत्य होगा, ऐसा मानता हूँ। अब यहाँ थोड़ा विचार करना आवश्यक है कि जब कोई वस्तु, दस्तावेज या व्यक्ति उपलब्ध ना हो तब उसकी जगह उसकी प्रति, चित्र या डुप्लीकेट को मान्यता दी जाती है। यदि असल हमें उपलब्ध हो तो उसकी नकल या उसकी प्रति को मान्यता नहीं दी जाती है। जैसे—कोई व्यक्ति जीवित हमें उपलब्ध है और हम उसका सम्मान करना चाहते हैं तो उससे प्रत्यक्ष रूप से मिलकर उसका आदर सत्कार व भेंट करते हैं। किन्तु यदि वह व्यक्ति अब इस संसार में नहीं है तो ही उसके चित्र या प्रतिमा को सामने रख पुष्प या अन्य विधि से सत्कार करते हैं। (यद्यपि यह जड़ पूजा ही है)।

किसी जीवित व्यक्ति के परिवार में उसका फोटो लगाकर, मूर्ति बनाकर हार चढ़ाया जाता हो, ऐसा कहीं देखने में नहीं आया, ना ही यह लौकिक दृष्टि से उचित माना जाता है।

अब यह विचार करें कि आपने इस उत्तर को तो ठीक माना कि जब असल ना हो तब मजबूरी में उसकी प्रति को मान्यता देते हैं। तो थोड़ा सोचें कि परमात्मा के सम्बन्ध में आपका क्या सोच है। क्या परमात्मा नहीं है? क्या परमात्मा हमें छोड़कर कहीं दूर चला गया है? या अब वह संसार में नहीं रहा है? निश्चित ही इसका उत्तर आपका यही होगा कि नहीं, नहीं, परमात्मा कहीं नहीं गया, परमात्मा हम को छोड़कर कभी भी नहीं जा सकता, वह कभी नहीं मर सकता, वह तो सदा से है, और सदा हमारे साथ रहेगा।

यदि आपके विचारों से उपरोक्त मान्यता सही है और इसे आप सत्य मानते हैं तो फिर परमात्मा के स्थान पर उसकी मूर्ति या चित्र की या अन्य की पूजा क्यों की जावे? जब वह स्वयं विद्यमान है, सदा है, सब जगह है, फिर उस असल की जगह नकल को स्थान क्यों? याद रखिये सत्याचरण ही धर्म कहलाता

ईश्वर से दूरी क्यों?

५३

है। अब आप स्वयं सोचें कि जो सत्य है, उसे मानना चाहिए या असत्य को। यह निर्णय आप करें।

प्रश्न २—आपको किसी व्यक्ति जिससे आपको कुछ कार्य हैं, आप उसके पास जाते हैं। किन्हीं कारणों से वह व्यक्ति वहाँ नहीं है कहीं गए हुए हैं, उनसे आप नहीं मिल पाते। किन्तु वहाँ उनका बड़ा-सा चित्र लगा है, जिस मकान में वे निवास करते हैं, वह भी वहीं है, अनेक वस्तुएँ जिनका वे उपयोग करते हैं, वे सब भी वहाँ मौजूद हैं, केवल वह व्यक्ति वहाँ नहीं है, जिनसे आपको कार्य है और जिससे मिलना चाहते हैं। इसलिए उनके न रहने पर क्या आप अपनी कोई इच्छा और कार्य उनके चित्र को मकान को, मेज को, कुर्सी आदि को जो सभी जड़ है, उन्हें कहकर आ जाते हैं। और यह सोचते हैं कि हम उस व्यक्ति से मिलकर आ गए, हमारा कार्य हो जावेगा। क्या आपका ऐसा मानना व कार्य हो जाने का विश्वास करना उचित है? क्या आपका कार्य हो जावेगा? निश्चित ही इसका उत्तर होगा नहीं।

क्या आपका उस व्यक्ति से मिलना हो गया, जिससे आप मिलना चाहते थे? उत्तर होगा नहीं। इन सभी उत्तरों से आप भी सहमत होंगे ऐसा समझता हूँ।

कोई साधारण बुद्धिवाला व्यक्ति भी आपके इस व्यवहार से कहेगा न तो उस व्यक्ति से आपका मिलना हुआ, न उस व्यक्ति के स्थान पर जड़ वस्तुओं को कही बात व प्रार्थना उस व्यक्ति तक पहुँचेगी और ना ही आपका कार्य जो आप जड़ वस्तुओं से कहकर आए वह हो सकता है।

यदि हमें किसी को अपनी बात कहनी है और वह मौजूद है, तो उसे स्वयं को मिलकर ही कहना होगा, उससे कुछ प्राप्त करना चाहें तो उस तक हमारी प्रार्थना व इच्छा की आवाज पहुँचनी चाहिए, यह आवश्यक है।

अब यहाँ थोड़ा विचार करें, परमात्मा है, सदा है, सब स्थान में छाया हुआ है, समस्त संसार उसमें और वह समस्त

संसार में व्याप्त है। कोई क्षण और कोई कण ऐसा नहीं जहाँ और जब वह उपलब्ध न हो। आगे फिर सोचें ये वृक्ष, पहाड़, नदियाँ, चित्र, मूर्ति, ये धातु क्या स्वयं ईश्वर है ? निश्चित ही नहीं है। ये सब उस ईश्वर की कृति है, उसकी दी हुई सौगात है, वस्तु है जिनका आवश्यकता के रूप में उपयोग किया जाता है। ये स्वयं परमात्मा नहीं है, किन्तु उसकी वस्तुएँ हैं।

पुनः इस प्रश्न के उत्तर को देखें जिसमें किसी व्यक्ति के स्थान पर उसकी वस्तुओं से काम नहीं बनेगा, उससे ही मिलना होगा। फिर हम परमात्मा के स्थान पर उसकी वस्तुओं को पूजकर उनके आगे प्रार्थना कर अपनी बात व इच्छा क्यों करते हैं ? क्या यह परमात्मा की पूजा है ? स्पष्ट है परमात्मा की वस्तुओं से की गई प्रार्थना और उनकी पूजा, परमात्मा की पूजा नहीं हो सकती, यह तो उसकी वस्तुओं की पूजा हुई किन्तु हम उसकी वस्तुओं को ही पूजकर उसकी पूजा मान रहे हैं, यह तो अज्ञानता है।

एक और विचारणीय प्रश्न हमारे सामने है। विचार करें, हम किसी व्यक्ति का स्वागत करना चाहते हैं, उसे सम्मानित करना चाहते हैं, उसके कार्यों का गुणगान करना चाहते हैं, किन्तु उस व्यक्ति के स्थान पर हम हार माला किसी दूसरे व्यक्ति को पहनाते हैं, किसी दूसरे को कुर्सी पर बैठाकर उसका गुणगान करने लगते हैं।

जरा सोचिए जो व्यक्ति उसी जगह पर मौजूद है, नाम तो स्वागत के लिए उसका लिया जा रहा है। किन्तु हार कोई और पहन रहा है, मंच पर उसकी जगह किसी और को बैठाया जा रहा है।

बताइए उस व्यक्ति को कैसा लगेगा, जिसका सम्मान होना था परन्तु उसके रहते हुए आप दूसरे व्यक्ति को सम्मानित कर रहे हैं। क्या यह अपमान नहीं है ?

अब ईश्वर के सम्बन्ध में भी आप सोचें, नाम ईश्वर का

ईश्वर से दूरी क्यों?

५५

लेते हैं, परन्तु पूज रहे हैं व्यक्तियों को, महापुरुषों को, जड़ वस्तुओं को, जबकि वह ईश्वर सदा हर स्थान पर विद्यमान है, तो फिर ये उसका अपमान करना हुआ या नहीं?

वास्तव में हम धर्म और ईश्वर के सम्बन्ध में अपने द्वारा किए गए प्रयास को ही उसका परिणाम मानकर सन्तुष्ट हो रहे हैं। जबकि हर किया हुआ प्रयास ही किसी परिणाम या सफलता का परिचायक नहीं होता है। किसी भी कार्य के लिए प्रयास सही दिशा में ठीक प्रकार से होगा तो ही उसका सही परिणाम आवेगा। विपरीत दिशा में जिन्दगी भर चलता हुआ राही कभी भी अपनी मंजिल पर नहीं पहुँच सकता। मात्र चलते रहना ही मंजिल पर पहुँचना नहीं कहा जा सकता। किन्तु सत्य यही है कि हम धर्म व ईश्वर के सम्बन्ध में मात्र प्रयास ही या चलना ही सही मंजिल पर पहुँचना मान रहे हैं।

अरे! वह ईश्वर तो आपके इतना ही नजदीक है कि, जितना आप अपने स्वयं के निकट हैं। किन्तु उसको आप पहचान नहीं पा रहे हैं, उसको पहचानने के उस मापदण्ड और ज्ञानचक्षु का उपयोग आप नहीं कर पा रहे हैं। उसे आप अपने चर्मचक्षुओं से बाहरी आँखों से देखना चाहते हैं, जबकि वह बाहरी आँखों का विषय नहीं है और यही ईश्वर से दूरी का कारण है।



द्वितीय भाग

ईश्वर कितने हैं ?

ईश्वर, प्रभु, भगवान, गॉड और खुदा।

नाम पर इनके हो रहे जुदा, जुदा ॥ १ ॥

ये कैसी भूल हमसे हो रही है।

एक पिता की सन्तानों में दूरी हो रही है ॥ २ ॥

आओ ढूँढ़ें, क्या है इसका कारण।

मनबुद्धि और आत्मा से हो निवारण ॥ ३ ॥

अब विचार करते हैं ईश्वर कितने हैं ? आज ईश्वर की संख्या के बारे में कोई निश्चित मत नहीं है। ईश्वर को एक से अधिक माननेवालों से भी पूछें तो वे भी संख्या कितनी हैं इस सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं बता सकते। कुछ तो ३३ करोड़ देवता बताते हैं, और कुछ ईश्वर एक ही बताते हैं। आज भी इस संख्या पर रोक नहीं लगी है, भगवानों की संख्या, देवी-देवताओं की संख्या निरन्तर बढ़ती जा रही हैं। यही मान्यता समाज को ईश्वर के नाम पर सदियों से निरन्तर बाँट रही है जो मानव संगठन की बहुत बड़ी क्षति है।

आज अनेक ईश्वर प्रचलित हैं। ईश्वर के सम्बन्ध में विभिन्न सम्प्रदायों, मजहबों, धार्मिक संगठनों की अलग-अलग मान्यताएं हैं। इस भिन्नता पर हमने कभी विचार ही नहीं किया। क्योंकि हमें धर्मभीरु बना रखा है और दूसरा कारण यह है हम इसे जीवन में कोई महत्त्व नहीं देते हैं। हमें किसी गुरु, परम्परा अथवा धार्मिक पुस्तक से भिन्न सोचना, बोलना उसके प्रति शंका-समाधान करना पाप बताया है। इतना ही नहीं ऐसा भय उत्पन्न कर रखा है कि उनके विरुद्ध बोलनेवाले व्यक्ति का नाश हो जाता है, वह नरक को प्राप्त करता है और वह नास्तिक है, आदि।

ईश्वर से दूरी क्यों?

५७

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक गेलीलियो को भी ऐसी ही धर्म-आडम्बर व मिथ्या मान्यता के कारण मौत के घाट उतारा था। क्योंकि उसने पृथ्वी को गोल बताया था, परन्तु उसके देश की मान्य धार्मिक पुस्तक बाइबिल में पृथ्वी चपटी बताई गई थी।

अध्यात्म की थोथी डरावनी मानसिकता में उलझा व्यक्ति सत्य को समझकर भी उसको अपनाने में और असत्य को समझकर भी उसे त्यागने में डरता है। जिस पथ पर वह चल रहा है उस पर ही चलना अपनी मजबूरी और अपना धर्म मानता है, चाहे वह मार्ग सत्य हो अथवा असत्य। वह प्रचलित शंकाओं के कारण अपने अहित के डर से घिरा हुआ है, उसे मनगढ़ंत कहानी, किस्सों, कथाओं ने डराया हुआ है। यह सब इसलिए किया गया ताकि वह ईश्वर के नाम पर धर्म के ठेकेदारों द्वारा बतायी गयी मान्यता को ही मानता रहे, और चुपचाप वह सब करता रहे जैसा उसे बताया गया है। क्योंकि धर्म और ईश्वर के नाम पर अन्धश्रद्धा का लाभ लेकर ही अनेक सन्त, उपदेशक, कथाकार प्रवचन करनेवाले अपरिग्रह व त्याग का उपदेश देनेवाले अपार सम्पत्ति के स्वामी बन गए हैं। उनका देश के बैंकों के अतिरिक्त विदेशी बैंकों में पैसा जमा है। न जाने कितनी जमीनों और न जाने कितने आश्रमों के वे स्वामी बन गए, जिनका हिसाब ही नहीं है। नाम त्यागी परन्तु अरबों के स्वामी। यह सब धर्म व ईश्वर के नाम पर मानसिक शोषण के कारण ही हो रहा है।

ईश्वर तो एक है, परन्तु उसके स्थान पर कल्पनाओं से ही अनेक ईश्वर माने जा रहे हैं। ईश्वर को जाने बिना और बिना उसे ठीक से समझकर की गई प्रार्थना, उपासना से सारा परिश्रम व्यर्थ हो जाता है, और उसका फल शून्य रहता है। हाँ पूर्व से बनी मानसिकता और उसके प्रति बने गहरे संस्कार मनोवैज्ञानिक रूप से उसे कुछ दिलासा अवश्य देते हैं। किन्तु यह दिलासा ठीक वैसी ही है जैसे किसी रोते हुए अबोध बालक को बहलाने के लिए उसका रोना चुप हो जावे, इसलिए उसे चूसने के लिए कोई नरम वस्तु मुँह में दे देते हैं। बच्चा उसे माँ का आँचल मानकर समझता है कि वह दूध पी रहा है। ऐसा समझकर वह

उसे चूसता रहता है और कुछ समय के लिए भ्रम में ही सन्तुष्ट हो जाता है। यह सन्तुष्टि उसे दुग्ध का लाभ तो नहीं दे पाती परन्तु यहाँ पर बालक को उसकी कोरी मानसिकता सन्तुष्टि प्रदान कर रही है, जिसमें न माँ का आँचल है, न दुग्ध है।

एक और उदाहरण से बात स्पष्ट हो जावेगी। कभी-कभी कुत्ता सूखी हड्डी उठाकर उसे मुँह में रखता है, उसे चबाने का प्रयास करता है, हड्डी तो बहुत मजबूत होती है, वह तो टूटती नहीं, किन्तु इस प्रयास से उसका मुँह आसपास से छिल जाता है, उसमें से थोड़ा-थोड़ा खून निकलने लगता है, जिससे कुत्ता बीच-बीच में चाटता रहता है, यह समझकर की इस हड्डी में से खून निकल रहा है। बस, वह घण्टों बिता देता है और मुँह के घाव व कष्ट को भूलकर भ्रम में सुख की अनुभूति भी करता है।

इसी प्रकार परमात्मा के स्वरूप का सही ज्ञान न होने पर भी परमात्मा के नाम पर प्रार्थना, उपासना करके थोड़ी-सी मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। यह इसलिए होती है क्योंकि कुछ समय एक अच्छे कार्य को करने का आभास मन को होता है जो प्रसन्नता प्रदान करता है किन्तु इतना पाकर ही सब कुछ हमने पा लिया हम यह समझ बैठे हैं।

जरा विचार करें मात्र परमात्मा के पास होने के भ्रम में ही जब आप मानसिकता के प्रभाव में सुख देखते हो, तो सोचो, यदि उसके सत्य स्वरूप को जानकर वास्तव में उसके पास जावेंगे, तो कितना लाभ होगा ?

इसलिए अज्ञान, अन्धविश्वास से हटकर ज्ञान की ओर बढ़ो। रात-दिन जीवन में हजारों बार पढ़ा—“तमसो मा ज्योतिर्गमय” अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो। परन्तु हम अपनी मानसिकता जो भले ही ज्ञानसम्मत न हो, सत्य पर आधारित न हो तथा उसे क्यों मान रहे हैं, इस सम्बन्ध में भी हम स्वयं नहीं जानते हैं ? किन्तु फिर भी उसे मानेंगे, उसमें परिवर्तन नहीं करना चाहेंगे, ऐसा करना अपनी शान बढ़ाना मान

ईश्वर से दूरी क्यों?

५९

बैठे हैं। किन्तु ध्यान रहे इस विचारधारा से कोई लाभ होनेवाला नहीं है, यह बिना कारण की गर्वोक्ति है।

एक ठाकुर साहब थे, उनसे किसी ने पूछा 'ठाकुर साहब, आपकी उम्र कितनी है?' उन्होंने कहा ३० वर्ष। कुछ साल बाद फिर उस आदमी की उनसे भेंट हो गई उसने पूछा—'ठाकुर साहब, अब आपकी उम्र कितनी है?' ठाकुर साहब ने कहा ३० वर्ष। ५-१० साल बाद दोनों की किसी कार्यक्रम में फिर भेंट हो गई। अन्य चर्चा करते-करते फिर उस व्यक्ति ने कहा—'ठाकुर साहब, अब तो आपकी काफी उम्र हो गई होगी?' ठाकुर साहब ने फिर कहा ३० वर्ष।

अब व्यक्ति ने पूछ ही लिया क्या बात है ठाकुर साहब आपकी ४० साल पहले भी उम्र ३० साल थी और अब भी वही ३० बता रहे हैं। ठाकुर साहब ने मूछों पर हाथ फेरते हुए कहा—'ये ठाकुर की जबान है, एक बार जो बता दिया, सो बता दिया अब इसमें फर्क नहीं आयेगा।' हमारे मन में भी ऐसा विचार न हो जो हमने एक बार बोल दिया, मान लिया, तो सोच लिया और बोल दिया सो बोल दिया अब उसमें बदलाव नहीं होगा।

सामान्य रूप में जब किसी मामले में हमारे सामने स्पष्टता न हो या जब हमारी समझ में कोई बात नहीं आती है, तब हम उस सम्बन्ध में अपने से अधिक जानकारी रखनेवाले व्यक्ति से पूछकर अपना संशय निवारण करते हैं। इन व्यक्तियों में आपके अध्यापक, मित्र, परिवार के बड़े बूढ़े, पिता, विद्वान्, सन्त, महात्मा ज्ञानी आदि सभी आते हैं। यदि कोई व्यक्ति उपलब्ध नहीं है तो किसी ज्ञानवर्धक पुस्तक या ग्रन्थ का या सत्संग का सहारा लेते हैं।

मन में अनेक संशय, स्वाध्याय से दूर हो जाते हैं। नीति निपुण चाणक्य ने इस सम्बन्ध में बहुत अच्छी बात कही है—

अनेक संशयोच्छेदि परोक्षार्थस्य दर्शनम्,
सर्वस्य नेत्रं शास्त्रं नास्यन्ध्य एव स।

—आचार्य चाणक्य

अर्थात्—स्वाध्याय करने से शास्त्र जीवन की अनेक शंकाओं को, दुविधाओं को दूर करने का मार्ग दिखा देते हैं। जो सामने प्रत्यक्ष रूप से नहीं दिखाई देता वह भी इनसे हम देख सकते हैं, क्योंकि सभी मनुष्यों के ज्ञानरूपी नेत्र ये शास्त्र हैं जिनसे सब देखा जा सकता है। जिनके पास शास्त्ररूपी नेत्र नहीं, वह तो अन्धा है।

महापण्डित चाणक्य के इस विचार को समझें जिसका सीधा अर्थ है—व्यक्ति के पास सब कुछ हो किन्तु ज्ञानरूपी नेत्र 'शास्त्र' नहीं है तो वह अन्धा है। संसार के समस्त सुन्दर दृश्य, सुन्दर कृति के होने पर भी नेत्रहीन के लिए उसका कोई महत्त्व नहीं है। उसी प्रकार ज्ञानहीन मनुष्य भी इस जगत् में अन्धा ही है। ज्ञान के अभाव में वह परमात्मा के उस दिव्य आनन्द से वंचित है, जो इस जीवन में ज्ञान से पाया जा सकता था।

यहाँ यह भी आवश्यक है कि अपने लिए सत्संग या स्वाध्याय ग्रन्थ भी वही चुनना चाहिए, जिसमें सत्यता हो, प्रामाणिकता हो, ऐसा सत्संग ही सत्य का संग कर सकता है फिर उन पर विश्वास करना ही हमारे लिए उचित है। केवल बाहरी आडम्बर, भक्तों की भीड़ देखकर भगवा वस्त्र, दाढ़ी, टीका, कण्ठी या आयु को ही आधार मानकर यदि आपने किसी की योग्यता को समझा तो धोखा होना सम्भव है। दुर्भाग्य से महाभारत युद्ध के पश्चात् यह विकृति तेजी से बढ़ती जा रही है दर्शन का स्थान प्रदर्शन ने ले लिया है। एक ही बात को रटते रहना, बार-बार उसे ही सुनना ज्ञानवृद्धि नहीं है, आज यही हो रहा है।

आज अधिकांश आध्यात्मिक कार्यक्रम मनोरंजन से जोड़े जा रहे हैं। कथाकार, सन्त, संन्यासी, अध्यात्म के व्यापारी बनकर संगीत, वक्तव्य कला सुसज्जित पाण्डाल और वेशभूषा से आकर्षित कर रटी रटाई बातों में नए-नए आकर्षक तरीकों से धार्मिक भावनाओं को उकसाकर भक्तों का मनोरंजन कर रहे हैं। धर्म व ईश्वर के नाम पर ख्याति प्राप्त कर रहे हैं। उनके ज्ञान का कोई ठोस आधार भी नहीं है। धर्म के मान्य आधार वेद,

ईश्वर से दूरी क्यों?

६१

उपनिषद्, स्मृति, दर्शन आदि प्रामाणिक ग्रन्थों का ज्ञान नहीं है, जो ईश्वर व धर्म की सही जानकारी दे सकते हैं। हास्य, वक्तव्यकला, गीत, व्यंग्य शैली और कुछ पुस्तकों को लेकर या भण्डारों के नाम पर वे दुकानदारी चला रहे हैं। इन सब कार्यों से मनोरंजन होता है और भीड़ इकट्ठी हो जाती है। बस बड़ी संख्या में एकत्रित होना ही कार्यक्रम की सफलता माना जाता है। मानव जीवन की उन्नति कैसे हो? उसके लिए क्या करना चाहिए? ईश्वर को क्यों मानें? किस तरह मानें? कैसे उसकी भक्ति करें? ये सब बातें उनके लिए गौण हो चुकी हैं। इसलिए ईश्वर के सत्य स्वरूप की चर्चा ऐसे व्यक्तियों से कभी सुनने को नहीं मिलती।

परमात्मा एक है, इस पर वेद, उपनिषद्, स्मृति ग्रन्थ, रामायण, महाभारत, गीता, कबीर, नानक, मनु, स्वामी शंकराचार्य आदि अनेक व्यक्ति तथा नीतिशास्त्र एकमत है। कुरान भी एक की उपासना का महत्त्व बताती है। इन सबके विचारों पर, जो वास्तव में वेद की ही बात का समर्थन कर रहे हैं उन पर हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिए।

वेद के अनुसार ईश्वर एक ही है। उसे वेद में कुछ ऐसे बताया—

न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
 न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
 नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते।
 य एतं देवमेकवृतं वेद॥
 तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव।

—अथर्व० १३।४।१६-१८, २०

वह परमात्मा न दूसरा है, न तीसरा, न चौथा है, न पाँचवाँ, न छठा, न सातवाँ, न आठवाँ, न नवमा, न दशवाँ। वह तो एक ही है जैसा वेद में दर्शाया है।

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहु रथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
 एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

—ऋ० १।१६४।४६

अर्थात्—एक सद् परमात्मा को इन्द्र, वरुण आदि, दिव्य सुपर्ण गरुत्मान और मातरिश्वा आदि नाम से पुकारते हैं। इन सब नामों में एक ही प्रभु का वर्णन है विद्वान् लोग उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।

ईश्वर एक है वही सूर्य, चन्द्रमा और जगत् का रचयिता है, यह इस मन्त्र में बताया—

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रै भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत्।

—यजु० १३।४

अर्थ—जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य-चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किए हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था।

एक ईश्वर के सम्बन्ध में पुनः कहा—

तमिदं निर्गतं सहः स एष एक एकवृदेक एव ॥

—अथर्व० १३।४।१२

य एतं देवमैकवृतं वेद ॥ —अथर्व० १३।४।१५

यह सामर्थ्य उसको ही प्राप्त है वह एक अकेला है जो उसको एक ही मानता है उसे सामर्थ्य प्राप्त होता है।

‘एक एव नमस्यो विश्वंभ्य’ एक ईश्वर ही पूजनीय है वही उपास्य है।

वेद के इसी मत को संसार के अनेक महापुरुषों ने भी स्वीकार किया है। अनेक ग्रन्थों में इसका वर्णन है, कृपया देखें—

ईश्वर एक है इस सम्बन्ध में सन्त नानकदेवजी कहते हैं—
“एक्योमकार, सतिनाम करता पुरख निरभऊँ निर्वैऊँ अकाल मूरति”

वह परमात्मा एक अद्वितीय ओंकार जिसका नाम है, सृष्टि का रचयिता, वह निर्भय, किसी से बैर न रखनेवाला, सदा रहनेवाला (अर्थात् आने-जाने, अवतार लेनेवाला नहीं) अकाल

ईश्वर से दूरी क्यों?

६३

व निराकार है।

रामचरितमानस में सन्त तुलसीदासजी बालकाण्ड में एक निराकार ईश्वर का उल्लेख करते हुए कहते हैं—“एक अनीह अनामा अज सच्चिदानन्द परमधामा।” वह एक निराकार परमात्मा है।

सन्त कबीरदासजी एक ईश्वर को ही मानते थे, उन्होंने कहा—

जो मन लगा एक सो तो निरवारा जाय।

तूरा दो मुँह बाजता घना तमाचा खाय॥

मनुष्य यदि एक से ही मन लगावे तो उसका उद्धार होगा, यदि अनेक जगह वह मन लगाता है तो ढोलक जैसी दोनों तरफ से उसकी पिटाई होती है।

साई का अर्थ भी भगवान, ईश्वर होता है। कहा जाता है, “सबका साई एक” अर्थात् सबका ईश्वर एक है। किन्तु अज्ञानतावश ईश्वर के सत्य स्वरूप का ज्ञान न होने के कारण आज साई का सम्बन्ध ईश्वर की जगह व्यक्तियों से जुड़ रहा है। उनके मन्दिर बनाए जा रहे हैं।

महाराष्ट्र में सन्त तुकड़ूदासजी बड़े प्रसिद्ध सन्त हुए उन्होंने गाया—

“हर देश में तू हर वेश में तू तेरे नाम अनेक पर तू एक ही है।”

सन्त रैदासजी ने लोगों की उस पुरातन मान्यता को नहीं माना कि मनुष्य जन्म के कारण ऊँचा-नीचा होता है। रविदास ने अपनी सहज भक्ति से मानव मात्र को एक ईश्वर की निर्मल मन से पूजा करने की प्रेरणा दी। वे मन को ही चन्दन और धूप मानते हैं। प्रभुजी का नाम सिमरन करना ही सच्ची आरती है, सच्ची भक्ति है।

ईश्वर एक ही है इस सम्बन्ध में ईश्वर विषयक प्रामाणिक ग्रन्थ कठोपनिषद् क्या कहता है, जरा देखें—

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति।

तमात्मस्थं येनुपश्यन्ति धीरास्तेषांसुखं शाश्वतन्नेतरेषाम्॥

—कठो० ५।१२

अर्थात्—जो एक है सबको वश में रखनेवाला है सर्वव्यापक और एक रूपवाली वस्तु (प्रकृति) को अनेक रूपों में कर सकता है, उस आत्मा के भीतर रहनेवाले ईश्वर को धीरे पुरुष ध्यानावस्थित होकर आनन्द प्राप्त करते हैं।

इसी सन्देश का व्याख्यान श्वेताश्वतरोपनिषद् में है—
एको देवः सर्वभूतेषुगूढः सर्वव्यापी सर्व भूतान्तरात्मा।

—श्वेताश्वतरो० अ० ६।११

अर्थात्—परमेश्वर एक है, वह सब प्राणियों के अन्दर छिपा है, वह सर्वव्यापक और सब प्राणियों के अन्दर तथा पुराणों में वर्णित चौदह भुवनों के अन्दर विद्यमान है।

आज ईश्वर की मान्यता स्वविवेक व अवैदिक मान्यता के अनुसार है, इस कारण ईश्वर के अनेक रूप, अनेक संख्या, अनेक अवतार प्रचलित पुस्तकों और अनेक विद्वानों के द्वारा प्रतिपादित किए जा रहे हैं।

किन्तु वेद का उपदेश न मानना या उसके विरुद्ध चलना धर्म को त्यागना है। यह सन्त तुलसीदासजी लिखते हैं—

जेही विधि चलहि वेद प्रतिकूला। तेहि विधि होई धर्म निर्मूला ॥

आज वेद के विरुद्ध व वेद को छोड़कर जो मान्यताएँ प्रचलन में हैं, तुलसीदास की दृष्टि में वे धर्म को नष्ट करनेवाली हैं। सन्त तुलसीदासजी की इस बात को हम क्यों नहीं समझते यह बड़ी विचित्र बात है। “चलहि कुपंथ” कहा है। जिस वेद को इतना महत्त्वपूर्ण बताया जा रहा है, हम भी रात-दिन वेदों की चर्चा सुनते रहते हैं फिर उस ईश्वरीय ज्ञान वेद को हमें मानने में क्या परेशानी है? क्यों नहीं मानते? उस पर हमें विश्वास करना चाहिए। ईश्वर एक है अनेक नहीं है, वेद केवल एक ईश्वर का सन्देश देता है।

एको विश्वस्य भुवनस्य राजा। —ऋ० ३।४६।२

अर्थात्—एक परमात्मा ही सारे विश्व का एक मात्र राजा है।

पुनः आपका ध्यान हमारे घरों में पूर्वजों के समय से जो

ईश्वर से दूरी क्यों ?

६५

आरती गायी जाती है, उस ओर ले चलते हैं, उसमें परमात्मा के ओ३म् नाम का तथा एक व निराकार होने का उल्लेख है।

आरती की पहली पंक्ति में “ओ३म् जय जगदीश हरे” अर्थात् हे जगत् के ईश ओ३म् की जय गाते हैं। आगे कहा— “तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति” तुम एक हो, निराकार अर्थात् दिखाई न देनेवाले, शरीररहित तथा सबके प्राणों के स्वामी हो।

ऐसा कौन सनातनधर्मी है जो इस आरती को नहीं मानता है ? सभी मानते हैं। किन्तु अन्धश्रद्धावश केवल आँख मूँदकर गाते रहे हैं, कभी उसके अर्थ को समझकर नहीं गाया। यदि समझकर गाते तो आरती में जैसा बताया उसके अनुसार ईश्वर एक ही मानते, अनेक नहीं। थोड़ा विचार करें ! यदि हम प्रार्थना में एक ईश्वर को जैसा बोल रहे हैं और उसे वैसा नहीं मानते तो फिर यह भी सत्य है कि हम भगवान को ही धोखा दे रहे हैं। उसके सामने ही रोज झूठ बोल रहे हैं, फिर तो यही मानना पड़ेगा। क्योंकि उसके सामने तो बोलते हैं ‘तुम एक हो’ किन्तु मानते अनेक ईश्वर हैं। हमारा यह कैसा दोहरा चरित्र है।

सनातन धर्म के महान् नायक योगीराज कृष्ण ने अर्जुन को इसी एक ईश्वर का नाम स्मरण करने का उपदेश देते हुए कहा—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।

—गीता ८।१३

एक ओ३म् परमात्मा के नाम का स्मरण करो।

इस्लाम की मान्यता में पाँच प्रमुख आधार बताएँ हैं। तोहीद, जमात, रोजा, नमाज, हज किन्तु किसी भी मुस्लिम सम्प्रदाय के व्यक्ति को तोहीद का मानना अत्यन्त आवश्यक है। तोहीद का अर्थ एक अल्लाह पर विश्वास करना। इस्लाम की धार्मिक पुस्तक ‘कुरान शरीफ’ है उसमें अनेक स्थानों पर एक ही ईश्वर (खुदा) को मानने का उल्लेख है।

इसी सन्दर्भ में सूरु अल हश्न आयात २२-२३ एवं सूरु

अत-तगाबुन आयत १३ पढ़ने में आयी। इसमें स्पष्ट लिखा है कि वह अल्लाह (ईश्वर) एक ही है, वही पूज्य है, उसके जैसा अल्लाह और कोई नहीं, वही सबका शासक, शान्ति को देनेवाला, जगत् बनानेवाला, सबकी रक्षा करनेवाला, प्रत्यक्ष और परोक्ष का ज्ञाता वही है, उसके अतिरिक्त कोई नहीं।

ईसाई सम्प्रदाय की धर्म पुस्तक बाइबिल में भी एक ईश्वर का प्रतिपादन किया है। बाइबिल में भी विभिन्न स्थानों को ईश्वर सृष्टिकर्ता, अद्वितीय, सर्वशक्तिमान्, परम स्वतन्त्र कहा है। एक मात्र ईश्वर के अतिरिक्त और कोई नहीं।

सनातनधर्मी पौराणिक भाई पुराण पर बड़ी श्रद्धा रखते हैं। इस सम्बन्ध में पुराण क्या कहते हैं—

एको व्यापी समः शुद्धो निर्गुणः प्रकृते परः ।

जन्म-वृद्ध्यादि रहितः आत्मा सर्वगतोव्ययः ॥

—विष्णु पुराण

जन्म से रहित आत्मा एक, व्यापक, समशुद्ध, निर्गुण और प्रकृति से परे हैं, जन्म वृद्धि आदि से रहित सर्वव्यापी और अव्यय है।

सर आइजक न्यूटन ने ही अपने नभ-विज्ञान शास्त्र विषयक ग्रन्थ Principia में लिखा है कि—

“All this materail universe is the handwork of one, Omnipotent and Omniscient Creator.”

अर्थात्—यह सारा भौतिक जगत् एक सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ परमेश्वर की रचना है।

एक ईश्वर के स्थान पर अनेक ईश्वर मानने का कारण भ्रान्ति है। इस प्रकार अनेक मान्यताओं व स्थापित ग्रन्थों ने ईश्वर एक ही बताया।

भ्रान्ति के कारण समाज में अनेक विचार प्रचलन में हैं, जो यथार्थ से दूर हैं, जिनका यह भी पता नहीं रहता कि ये क्यों मान रहे हैं, और इसे मानने का आधार क्या है।

ईश्वर व देवी, देवता, भगवान् सब एक ही हैं, यह आम

ईश्वर से दूरी क्यों?

६७

धारणा है।

ईश्वर तो एक है जैसा हमारे सम्माननीय सन्तों ने, धर्मगुरुओं ने, विद्वान् पूर्वजों ने, सद्ग्रन्थों ने बताया है। किन्तु देवता के नाम से उन्हें भी जाना जाता है जो जड़ पदार्थ संसार को देते ही देते हैं। जैसे सूर्य, चन्द्रमा, वायु, जल ये सब देनेवाले हैं, इसलिए इन्हें सूर्यदेवता, चन्द्रदेवता, अग्निदेव आदि नाम से सम्बोधित किया जाता है और माता-पिता, पितर, चेतन देवता माने जाते हैं।

सामान्य रूप से भगवान् उन्हें कहते हैं जिन्होंने जीवन जन सामान्य से ऊपर उठकर श्रेष्ठ जीवन जीया। जिन्होंने परोपकार को जीवन लक्ष्य बनाकर अपने श्रेष्ठ कर्मों से अपनी यश कीर्ति फैलाई है, जिनका जीवन अत्यन्त धार्मिक और आदर्श था, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष आदि कुटिल भावनाओं से ऊपर थे, वे भगवान् या देव के नाम से भी जाने जाते हैं, जो इसी क्रम में आगे दर्शाया है।

भगवान् राम, भगवान् श्री कृष्ण, भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध, भगवान् दयानन्द, गुरुनानक देव ऐसे अनेक नाम हैं और आगे भी हो सकते हैं। भगवान् व देव तो कितने भी हो सकते हैं, किन्तु जगत्नियन्ता, सर्वाधार, सर्वव्यापक, सृष्टि का निर्माता, रक्षक, प्रलयकारी ईश्वर तो एक ही है। ईश्वर भी सदा देता है, देवत्व उसका गुण है, इसलिए उसे देवता भी कहते हैं। इसी कारण मानव में श्रेष्ठ पुरुष जो देवता तुल्य हुए उन्हें भी ईश्वर मानने लगे।

जिन महापुरुषों को हम भगवान् कहते हैं उन सबका भी आराध्य ईश्वर ही रहा। उन्होंने ईश्वर के बताए मार्ग पर चलते हुए ही जीवन की सर्वोत्कर्ष ऊचाईयाँ प्राप्त की और अमर हो गये तथा भगवान् की श्रेणी में आ गए। भगवान् राम, भगवान् कृष्ण भी तो नित्य उस प्रभु की सन्ध्या, उपासना, प्रार्थना करते थे, ऐसा कई बार उनके जीवन-चरित्र में व ग्रन्थों में आया है। देवता और ईश्वर के अन्तर न समझने के कारण ही

भ्रान्तिवश ३३ कोटि देवताओं को ३३ करोड़ भगवान या ईश्वर समझा जाने लगा है। इस ३३ करोड़ भगवानों को समझने में एक नहीं दो भूलें हैं। भगवान्, ईश्वर व देवी-देवताओं के अन्तर की भूल तो है ही हमारी दूसरी भूल कोटि शब्द का केवल 'करोड़' मानने से हुई है।

यदि ३३ करोड़ देवी-देवताओं को हम मानते हैं तो वे कौन-कौन से हैं? उनके नाम क्या हैं? कहाँ उनका उल्लेख है? किस ग्रन्थ में है? किसने ये बताये हैं?

संसार में इन प्रश्नों का आज तक कोई उत्तर नहीं दे सका, और न ही कोई और दे सकता है। क्योंकि ३३ करोड़ की मान्यता ही अज्ञानता व भ्रमवश है, असत्य है। जो बिना सोचे समझे मात्र यूँ ही चल रही परम्परा की कल्पना है।

यह गलती कोटि के "एक ही" अर्थ को समझने के कारण हुई जिसमें कोटि का अर्थ केवल 'करोड़' समझा गया। जबकि कोटि का अर्थ श्रेणी या प्रकार भी होता है। कहा जाता है 'उच्चकोटि के विद्वान्' है, 'उच्चकोटि के संगीतकार' हैं। यहाँ कोटि का अर्थ श्रेणी माना जाना चाहिए। यदि यहाँ कोटि का अर्थ करोड़ मान लिया तो अर्थ का अनर्थ हो जावेगा।

वास्तव में ३३ कोटि देवता हैं जो हमेशा देते ही रहते हैं, जिनके बिना यह सृष्टिक्रम चल ही नहीं सकता। इनका उल्लेख महर्षि दयानन्द सरस्वती ने सत्यार्थप्रकाश नामक अपने अमर ग्रन्थ में सातवें (समुल्लास) में कुछ ऐसे किया है—

“तैंतीस देव कौन से हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्रमा, सूर्य और नक्षत्र सब सृष्टि के निवास स्थान होने से आठ वसु कहलाते हैं, ये ८ देवता हुए। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनञ्जय और जीवात्मा ये ११ 'रुद्र' इसलिए कहाते हैं कि जब शरीर को छोड़ते हैं तब रोदन करानेवाले होते हैं, ये ११ देवता हैं। संवत्सर के १२ महीने 'आदित्य' इसलिए हैं कि ये सबकी आयु को ले जाते हैं, ये १२ देवता हैं। बिजुली का नाम 'इन्द्र' इस हेतु से है कि यह

ईश्वर से दूरी क्यों?

६९

परम ऐश्वर्य का हेतु है ये भी देवता है। यज्ञ को 'प्रजापति' कहने का कारण यह है कि जिससे वायु, सृष्टि, जल, औषधि की शुद्धि, विद्वानों का सत्कार और नाना प्रकार की शिल्पविद्या से प्रजा पालन होता है, ये भी देवता है। ये तींतीस पूर्वोक्त गुणों के योग से 'देव' कहाते हैं।" तैंतीस प्रकार के देवताओं के स्थान पर तैंतीस करोड़ की मान्यता का प्रचलन हो गया।

इसी प्रकार ईश्वर का बार-बार अवतार लेकर जन्म लेना बताया और हर बार के जन्म में, अवतार में अलग-अलग स्वरूप बताया गया है। यदि ईश्वर बार-बार अवतार या जन्म लेवे तो सामान्य मानव और उसमें क्या अन्तर रह जावेगा? उसे अपनी बार-बार पहचान बदलने की क्या जरूरत है। क्या सूर्य, चन्द्रमा, जल, आकाश, पृथ्वी आदि को अपना बार-बार रूप बदलना पड़ता है? क्या ये सभी कभी रूप बदलते हैं? नहीं बदलते, किन्तु प्रारम्भ से जब से जन्मे जब से निर्माण हुआ तब से एक ही रूप में हैं और सब उसे जानते, मानते हैं। फिर ईश्वर में बदलाव क्यों?

यदि ईश्वर को साकार मानव जैसा देहधारी बतायेंगे तो वे सारी मान्यताएँ गलत हो जावेंगी जो ईश्वर के सम्बन्ध में हमारे महापुरुषों, विद्वानों और संसार के सर्वोच्च प्रामाणिक ज्ञान वेद में उसको निराकार और अजन्मा बताती हैं।

यदि ईश्वर बार-बार जन्म या अवतार लेगा तो उसे अविनाशी, नित्य, अजन्मा, निराकार, सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान, यह सब कहना छोड़ना पड़ेगा। ये सारी बातें उस परमात्मा के गुणों से लुप्त हो जाएँगी, यदि उसे साकार माना तो।

फिर एक बात और है, जो अवतार लेता है या जो हमारे मध्य आता है तो यह मानना ही पड़ेगा कि आने से पूर्व वह हमारे बीच नहीं था। पूर्व से कोई व्यक्ति हमारे मध्य बैठा हो तो उसे फिर से आने की आवश्यकता नहीं होगी, आवेगा तो वही जो पहले से विद्यमान नहीं है।

कृपया अपनी बुद्धि का प्रयोग कर सोचें, क्या ऐसा भी कोई

समय है या ऐसा कोई क्षण हो सकता है, जब हमारे बीच परमात्मा न हो, और उसे अवतार लेकर आना पड़े? निश्चित ही ऐसा कभी सम्भव नहीं है। एक छोटा वाहन भी बिना चालक के ठीक प्रकार से नहीं चल सकता तो दुनिया बिना चालक के कैसे चल सकती है?

एक और बात है। अवतार के सम्बन्ध में कहा जाता है कि परमात्मा मानव लीला करते हुए सब दिखाता है इसलिए उसे अवतार या जन्म लेना पड़ता है।

यह विचार भी काल्पनिक और धार्मिक मान्यता के प्रवाह में प्रवाहित अन्धश्रद्धा से भरे कहानी किस्सों पर आधारित हैं, अवैदिक है, सनातन मान्यता के अनुसार नहीं है।

मान लीजिए भारत के राष्ट्रपति को किसी व्यक्ति को या शहर को कोई सन्देश देना होता है, तो क्या उसे स्वयं आना जरूरी है? वह तो अपने स्थान से ही निर्देश देकर कार्य को अंजाम दे सकता है, उसको स्वयं को आना जरूरी नहीं है।

अक्सर कहा जाता है कि अमुक राक्षस को मारने के लिए, उसका वध करने के लिए ईश्वर ने अवतार लिया। यह कितनी हास्यास्पद स्थिति है हमारी सोच की।

जिस परमेश्वर के द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड संचालित होता है, जिसके द्वारा निर्मित लाखों सूर्य नियमित कार्य कर रहे हैं, अथाह जल के भण्डार बड़ी-बड़ी नदियाँ जिसके द्वारा प्रवाहित हो रही हैं, जो जाने कितने समुद्रों का स्वामी है, अनन्त सृष्टि, अनन्त कोटि के मानवों और प्राणियों का स्वामी है, जिसके द्वारा सृष्टि की रचना, रक्षा और प्रलय किया जाता है उसे एक छोटे-से काम के लिए जन्म लेना पड़ेगा? छोटे-छोटे से कार्यों के लिए उसे मनुष्य का स्वरूप धारण करना पड़े, यह तो उसकी क्षमता उसकी शक्ति व उसके विराट् स्वरूप का तिरस्कार है। उसे सर्वशक्तिमान् कहना फिर तो गलत ही होगा।

जो परमात्मा किसी को कुछ सिखाना चाहे, समाज को बताना चाहे, पापियों को दण्ड देना चाहे तो उसके लिए यह

ईश्वर से दूरी क्यों?

७१

कोई कार्य कठिन नहीं है। वह तो पहले से ही सर्वव्यापक है। उसको फिर आना हास्यास्पद लगता है। वह साकार रूप में बिना आए ही सृष्टि की रचना, उसका संचालन और प्रलय करता है, जीवों का कर्मफल प्रदाता है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्मों का फल भोगता है और उसे देनेवाला परमात्मा ही है। कई व्यक्ति जन्म से लूले, लंगड़े, अपाहिज होते हैं, निर्धनता से ग्रस्त पेट भरने के मोहताज होते हैं, कई अरबों का स्वामी है, पर निःसन्तान होते हैं। किसी के पास सब कुछ है पर वह स्वस्थ नहीं है? क्या यह परमात्मा के द्वारा निश्चित की गई कर्म व्यवस्था का फल नहीं है?

क्या किसी को लंगड़ा, लूला, अन्धा, अपाहिज, गरीब, निःसन्तान बनाने के लिए स्वयं परमात्मा को जन्म लेकर यह सब करना पड़ता है?

परमात्मा की व्यवस्था में जो उसके करणीय काम है उसके लिए उसे स्वयं साकार रूप में आने की आवश्यकता नहीं।

पशुओं के बच्चे को खाना, पीना, तैरना, सन्तान वृद्धि करना कौन सिखाता है? चिड़िया को अपना घोंसला बनाना कौन सिखाता है? अबोध बालक को अपनी माँ का दूध हजम करने के लिए तेजी से हाथ-पैर चलाने की अकल किसने दी? क्या इन सबके लिए परमात्मा ने जन्म लिया? फिर ये सब कैसे हो गया? यह सब बिना उसके साकार रूप लिए भी सम्भव हुआ है क्योंकि उस परमात्मा के द्वारा जो उसे करना है वह बिना किसी रूप धारण किए ही करा सकता है। वह सर्वशक्तिमान है।

ईश्वर के अनेक नामों के महत्त्व को न समझने के कारण भी एक के स्थान पर अनेक ईश्वरों की कल्पना हो गई। नाम किसी वस्तु, स्थान, व्यक्ति के पहचान का आधार है, जो किसी के परिचय की पहली आवश्यकता है। दूसरे शब्दों में समझे तो नाम एक किसी व्यक्ति, वस्तु, स्थान समय गुण, व्यवहार की पहचान कराता है। ऐसा सम्बोधन जिससे हम किसी को निश्चित रूप से समझ सकें।

अब दूसरी महत्त्वपूर्ण बात भी समझें, नाम रखने का आधार क्या है। यदि यह समझ लिया तो समस्या ही हल हो जावेगी। नाम, जाति, गुण, कर्म, स्वभाव, योग्यता या पारिवारिक व्यवस्था के आधार पर होता है। जैसे वकील, डॉक्टर, इञ्जीनियर, सैनिक आदि व्यक्ति के कर्म के कारण, माता-पिता, भाई-बहन आदि का सम्बोधन पारिवारिक व्यवस्था के कारण है। दयालु, कृपालु, धर्मात्मा उसके गुण के कारण है। इसी प्रकार से वह परमात्मा तो एक है किन्तु उसके अनेक गुण, कर्म व स्वभाव होने से उसके नाम अनेक हैं। अनेक नाम होने से अनेक परमात्मा होने का भ्रम उत्पन्न हो गया।

उदाहरण के लिए जैसे—आपका मित्र है जिसका नाम रमेश है, वही रमेश एक अच्छा डॉक्टर है, संयोगवश वह एक अच्छा संगीतकार है, गायक भी है, उसका उपनाम शर्मा है, उसके परिवार में पुत्र-पुत्रियाँ हैं, माता हैं, पिता है, भाई है, बहने हैं, उसके बच्चे हैं। अब अलग-अलग समय में कभी रमेश को जो किसी कमरे के अन्दर है उसे पुकारना पड़े तो सब अलग-अलग नाम से आवाज देकर पुकारेंगे। कोई उसे डॉक्टर साहब, कोई उसे शर्माजी, कोई उसे भैया, कोई बेटा, कोई ताऊजी, कोई मामाजी और कोई रमेश कहकर आवाज देता है। कोई उसे गायक या संगीतकार के नाम से पुकारेगा।

ध्यान दीजिए, व्यक्ति एक है किन्तु उसे अनेक रूपों में सम्बोधित किया जा रहा है। नाम का अर्थ व महत्त्व किसी वस्तु, व्यक्ति, स्थान की पहचान करवानेवाला सम्बोधन। मुख्य नाम तो रमेश है, किन्तु डॉक्टर, गायक, बेटा, पिता, मामा, भाई, मित्र ये उसके गुण-कर्म-स्वभाव के कारण उसकी पहचान का कारण बन गए, जिनके द्वारा उसे पुकारा जाता है। इस प्रकार व्यक्ति एक है किन्तु उसके अनेक नाम हो जाते हैं। किन्तु किसी व्यक्ति को रमेश के इन सारे गुणों व सम्बन्धों की जानकारी न हो और वह उसे पहले से पहचानता नहीं हो तो फिर वह हर सम्बोधन के साथ रमेश अलग और संगीतकार, डॉक्टर, गायक आदि

ईश्वर से दूरी क्यों ?

७३

अलग-अलग व्यक्ति होने का ही अनुमान लगाया जावेगा।

इसी प्रकार ईश्वर के असंख्य गुण, कर्म, स्वभाव हैं। इस कारण वह अनेक नामों से जाना जाता है, उसको पुकारा जाता है। यही कारण है उस ईश्वर के अनेक नाम होने से भ्रान्तिवश उसके नाम के अनुसार अलग-अलग उसे माना जा रहा है।

किन्तु विद्वान् लोग क्या कहते हैं—“एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति।” परमात्मा एक है किन्तु विद्वान् लोग उसे अनेक नाम से पुकारते हैं। अनेक नामों से इसलिए क्योंकि उसके गुण, कर्म, स्वभाव अनेक हैं। सबका कल्याण करता है, इसलिए उसे “शिव” कहते हैं। शिव का अर्थ “कल्याणकारी” होता है। संसार का स्वामी और सबसे ऐश्वर्यशाली होने से उसे “इन्द्र” कहा गया। वह सौम्य है, इसलिए उसे “सोम”, वह शान्ति को देनेवाला है, इसलिए “शनि”, वह आनन्द का भण्डार व सुखों की वृष्टि करनेवाला, विस्तृत है, सबसे महान् है, उसे “ब्रह्मा” व “विष्णु” कहा। प्रजा का स्वामी है इसलिए “प्रजापति” कहा, सभी गुणों का, प्राणिमात्र का वह ईश है, इसलिए “गणेश”। दुष्टों को रुलाता है, इसलिए “रूद्र”, सबका पिता है इसलिए “परमपिता”, ऐसे अनेक नामों से पुकारा जाता है। महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ ‘सत्यार्थप्रकाश’ में प्रथम अध्याय में ईश्वर के गुणों, कर्मों की व्याख्या की है परमात्मा के मुख्य नाम और गुण-कर्मों के अनुसार अनेक नामों का स्पष्टीकरण किया है।

अनेक नाम से पुकारने के कारण ही कुछ लोग परमात्मा को एक से अधिक मानते हैं। यदि वास्तव में परमात्मा कई होते तो फिर तो बड़ी समस्या हो जाती। इतने सब ईश्वर कभी तो किसी मुद्दे पर अलग-अलग होते? फिर ईसाइयों के भगवान्, मुसलमानों के भगवान्, हिन्दुओं के भगवान् आपस में विवाद ही करते रहते। फिर ईसाइयों के भगवान् अपने भक्तों की सुनकर हिन्दुओं का बुरा कर सकते थे। इसी प्रकार हिन्दुओं के भगवान् मुसलमानों व ईसाइयों का बुरा कर सकते थे।

इसी प्रकार जहाँ अनेक संचालक हों तो उनकी संचालन विधि में कुछ तो विविधता होगी ही। किन्तु सृष्टि क्रम में आज तक कोई विविधता या परिवर्तन नहीं दिखा। जल की शीतलता, सूर्य का तेज, अग्नि की गर्मी, मनुष्य का शरीर, वनस्पतियाँ आदि सब वैसे ही हैं। पृथ्वी निरन्तर घूम रही है, दिन-रात सदा से वैसी ही हैं। यह सब इसलिए क्योंकि इन सबका नियन्ता, उत्पत्तिकर्ता, पालक, प्रेरणास्त्रोत एक ही है अलग-अलग नहीं।

मर्यादा पुरुषोत्तम राम और योगिराज श्री कृष्ण ये दोनों ही सनातन संस्कृति के देदीप्यमान नक्षत्र हैं। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने दोनों के विषय में कहा है कि इन दोनों महापुरुषों का जीवन एक आदर्श है। इनका जीवन व आचरण वेदानुकूल रहा। किसी प्रकार के कोई दोष इनमें जन्म से मृत्यु पर्यन्त नहीं थे।

निश्चित रूप से राम का चरित्र, कृष्ण का ज्ञान हमारी धरोहर है। उसका अनुसरण कर हम भी जीवन की सर्वोत्कृष्ट ऊँचाइयाँ पा सकते हैं। परन्तु इन्हें ईश्वर नहीं मानना चाहिए, ये महामानव, महापुरुष, देवता तुल्य हैं। यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है। कोई व्यक्ति १२वीं कक्षा पास कर चुका या ग्रेज्युएट है वह पहली कक्षा की परीक्षा देकर कक्षा में सबसे अधिक अंक प्राप्त कर लेवे तो आप उसे बड़ी उपलब्धि मानेंगे ? नहीं मानेंगे क्योंकि जो कक्षा १२वीं का विद्यार्थी है उसके लिए पहली कक्षा की परीक्षा तो कोई मायने ही नहीं रखती है वह कोई खास उपलब्धि नहीं कही जावेगी। किन्तु कोई ऐसा विद्यार्थी जिसने पहली में प्रवेश लिया हो वह प्रथम आता है तो उसका यह कार्य प्रशंसनीय है, उसकी प्रशंसा होनी चाहिए।

रावण वध, कंस वध यदि ईश्वर ने किया ऐसा कहा जाता है। जिन्हें हम महान् कार्य या अच्छे कार्य जो श्री रामचन्द्र व श्री कृष्णचन्द्र के जीवन में देखे जाते हैं, यदि ये ईश्वर ने किए तो इनकी प्रशंसा करना व्यर्थ होगा, क्योंकि ईश्वर तो अति विराट् सर्वशक्तिमान् है। उसके द्वारा ये सब किया गया तो कोई खास बात नहीं। किन्तु एक मानव के रूप में इतने अच्छे कार्य श्री

ईश्वर से दूरी क्यों?

७५

राम व श्री कृष्ण ने किए, इस कारण वे प्रशंसनीय हैं और आज दुनिया याद करती है। इन्होंने कर्म और ज्ञान में मानव जीवन की सर्वोच्च ऊँचाइयों को प्राप्त किया, किन्तु फिर भी सृष्टि के पालक, रक्षक सर्वव्यापक सबको कर्म फल देनेवाले, सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता, सर्वान्तर्यामी, पूर्ण ब्रह्म नहीं हो सकते।

वह परमात्मा जन्म, क्लेश, दुःख व राग-द्वेष से मुक्त है। ये सारी बातें तो जीवात्मा में पायी जाती हैं। ऋषि पतञ्जलि योगदर्शन में बताते हैं—“क्लेशकर्मविपाकाशयैरापरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।”

अर्थात्—क्लेश और कर्मफल-आशय से रहित है, वह पुरुष-विशेष ईश्वर है। किन्तु राम और कृष्ण के जीवन में क्लेश, राग को देखा जा सकता है। उनके जीवन में ये सब घटित हुआ है। इसलिए उन्हें ईश्वर की श्रेणी में मानना शास्त्रोक्त नहीं है।

इस पर थोड़ा विचार करें—राम को हम मर्यादा पुरुषोत्तम से सम्बोधित करते हैं अर्थात् जो पुरुषों में उत्तम है, इसलिए पुरुषोत्तम नाम से सम्बोधित करते हैं। स्वयं राम ने अपने को मनुष्य बताते हुए कहा—

आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्।

—बा० रामायण युद्ध काण्ड ११७ सर्ग

अर्थात्—मैं अपने को मनुष्य ही मानता हूँ और राजा दशरथ का पुत्र हूँ। कर्मों के भोग सदा जीवात्मा को ही भोगने होते हैं। ईश्वर पर यह सिद्धान्त लागू नहीं होता है। जब सीता हरण हो गया तो श्रीराम कहते हैं—

पूर्वं मया नूनमभीप्सितानि पापानि कर्माण्यसकृतानि ॥

—अरण्य काम्ड ६३ सर्ग

अर्थात्—मैंने पूर्व जन्म में बार-बार ऐसे दुष्कर्म किए थे तो मुझे निरन्तर दुःख भोगने पड़ रहे हैं। राज्य से तथा अपने पारिवारिक जनों से वियोग होना, पिताश्री की मृत्यु हो जाना और अब सीता का वियोग होना, क्या यह दुःखों से, कष्टों से अग्नि

की भाँति जलना होना नहीं है ?

क्या ईश्वर कर्मों का फल भोगता है ? नहीं, कदापि नहीं।

इसी प्रकार कहा गया—

किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि।

येन धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः ॥

—युद्ध काण्ड सर्ग १०१

अर्थात्—लक्ष्मण को मूर्छित देखकर अत्यन्त दुःखी होकर श्रीराम कहते हैं कि मेरे पूर्व जन्म में ऐसा कोई दुष्कर्म हो गया है, जिसका फल यह है कि मैं अपने धार्मिक भाई को मृत देख रहा हूँ।

यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्मणां परिमार्जिता।

तत्कृतं सकलं सीते शत्रुहस्तादमर्षणात् ॥

अर्थात्—रावण वध के पश्चात् राम ने सीता से कहा—हे सीता! मैं मनुष्य होता हुआ जो कुछ कर सकता था, वह सब मैंने किया। और यह अच्छा ही रहा कि शत्रुओं के हाथ से कभी घर्षित नहीं हो सका।

इत्यादि रामायण के अनेक प्रसंगों से स्पष्ट है कि श्री राम स्वयं अपने को मनुष्य ही मानते थे। जन्म-जन्मान्तरों के शुभ व अशुभ कर्मों के ईश्वरीय व्यवस्था से मिले शुभाशुभ फलों में भी पूर्ण विश्वास करते थे। जिसका जन्म होता है वह ईश्वर या ईश्वरावतार तो कभी हो ही नहीं सकता। क्योंकि जीवात्मा के पूर्वकृत कर्मों के फल स्वरूप ही मानव या अन्य जन्म मिलता है।

अपने जीवन काल में स्वयं राम द्वारा परमात्मा की स्तुति, प्रार्थना व सन्ध्या करने का उल्लेख किया गया है।

जब सीताहरण हो गया और उसे ढूँढ़ने राम व लक्ष्मण जा रहे थे, तब उन्हें मार्ग में जटायु घायल अवस्था में कराहते हुए मिले। परिचय हुआ किन्तु कुछ समय पश्चात् घायल जटायु की मृत्यु हो गई। उनका अन्तिम संस्कार दोनों भाइयों ने किया। उस

ईश्वर से दूरी क्यों ?

७७

समय परमात्मा से प्रार्थना करते हुए श्रीराम कहते हैं—

हे ईश्वर ! इस महापुरुष की गति किसी पुण्यात्मा व दानवीर राजा जैसी हो ।

थोड़ा सोचें, क्या एक ईश्वर स्वयं के लिए या किसी दूसरे के लिए ऐसा कहेगा ? एक मनुष्य होने के नाते ही ऐसी प्रार्थना की जा सकती है ।

परमात्मा की प्रार्थना और सन्ध्या भी राम और लक्ष्मण नित्य करते थे । तुलसीकृत रामायण बालकाण्ड में लिखा—

विगत दिवसु गुरु आयुस पाई ।

सन्ध्या करन चलेऊ दोऊ भाई ॥

राम किसकी सन्ध्या करते थे ? क्या स्वयं की अर्थात् ईश्वर द्वारा स्वयं ईश्वर की ? राम मानवीय श्रेष्ठ कर्म यज्ञ भी करते थे । जब राम और लक्ष्मण मुनि विश्वामित्र के साथ यज्ञ की रक्षा के लिए जाते हैं, तो मुनि प्रायः कहते हैं—

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते ।

उत्तिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाह्निकं ॥

—सर्ग २३

अर्थात्—कौशल्या के सुपुत्र राम प्रातःकाल का समय हो गया है, नर श्रेष्ठ उठो, सन्ध्या आदि दैनिक कार्य करो । तब वे ऋषि के पवित्र वचन सुनकर पुरुषश्रेष्ठ दोनों भाई स्नान, सन्ध्या एवं जप करते हैं । मिथिला जाने के समय भी

कच्चिदग्निषु ते युक्तो विधिज्ञो मतिमानृजुः ।

हतुं च होष्यमाणं च काले वेदयते सदा ॥

—अयोध्या का० १००।१२

प्रशुची परमं जप्यं समाप्य नियमेन च ।

हुताग्निहोत्रमासीनं विश्वामित्रमवन्दताम् ॥

—अयोध्या का० १००।३१

राम लक्ष्मण दोनों राजकुमार सावधानी के साथ रात्रि व्यतीत करके प्रातःकाल उठे और सन्ध्योपासना की । अत्यन्त पवित्र

होकर परम जप गायत्री का नियमपूर्वक उन्होंने जप किया और उसके बाद अग्रिहोत्र करके बैठे हुए गुरु विश्वामित्र की वन्दना की।

आश्वासितो लक्ष्मणेन रामः संध्यामुपासत।

सीता के शोक से दुःखी राम ने लक्ष्मण द्वारा धैर्य बंधाने पर सन्ध्या-उपासना की।

इसी प्रकार योगिराज श्रीकृष्ण भी अपने को ईश्वर नहीं कहते तथा अर्जुन को उपदेश करते हुए बताया ईश्वर कौन है? कहाँ है? क्या नाम है? इसका उपदेश गीता में दिया है।

अर्जुन को उस परमात्मा की शरण में जाने का उपदेश देते हुए श्रीकृष्ण ने कहा है—

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।

ततप्रसान्दपर श्रान्तराजस्वशाश्वतम्॥

—गीता १८।६१

अर्थात्—उस परमात्मा की शरण में सब भावों को लेकर जावो, वहीं शान्ति मिलेगी। यहाँ यह नहीं कहा कि तू मेरी शरण में आ तो तुझे शान्ति दे दूँगा।

पुनः कहा—

ईश्वर सर्व भूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।

भ्रामयन् सर्व भूतानि यन्त्र रूढानि मायया॥

—गीता १८।६१

वह परमेश्वर सब प्राणियों के हृदय में रहता है तथा संसार को वैसे ही चलाता है जैसे कोई मनुष्य यन्त्र चलाता है। उस परमात्मा का नाम क्या है, यह भी योगिराज बताते हुए कहते हैं—

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।

—गीता ८।१३

वह एक ओम् परमात्मा ब्रह्म है उसे इसी नाम से स्मरण कर।

ईश्वर से दूरी क्यों ?

७९

इन विचारों को पढ़ें, समझें और निर्णय करें कि योगेश्वर श्री कृष्ण ने ईश्वर का अपने से अलग अस्तित्व बताया है, वह क्या गलत है ? यहाँ श्री कृष्ण भी उस एक 'ओ३म्' परमात्मा को स्मरण करने के विषय में बता रहे हैं।

इतना ही नहीं श्री कृष्ण भी यज्ञ को श्रेष्ठ मानते थे तथा स्वयं ईश्वर की सन्ध्या करते थे।

जब कौरवों के पास सन्धि सन्देश लेकर पाण्डवों की ओर से जा रहे थे, रास्ते में सूर्य अस्त होने लगा, सन्ध्या समय हो गया, उस समय का वर्णन कुछ इस प्रकार है—

अवतीर्य रथात् कृत्वा शौचं यथाविधि।

रथमोचनमादिश्य सन्ध्यामुपविशेष ह॥

—उद्योगपर्व ८३।२१

अर्थात्—नदी के समीप रथ रोका, स्नान किया, सन्ध्या की, फिर आगे चले।

किसकी सन्ध्या की ? क्या स्वयं की ? निश्चित ही एक परमात्मा की, जिसे 'ओ३म्' नाम से पुकारते हैं।

ईश्वर के सत्य स्वरूप को न जानने के कारण संसार में अनेक लोग पूजे जाने लगे। दुर्भाग्य से दूसरी शृंखला में अनेक महापुरुष व अनेक धूर्त सामान्य व्यक्ति, जो हाथ की सफाई आदि चमत्कारों के प्रभाव से ईश्वर के रूप में पूजे जाने लगे।

एक शब्द जुड़ गया है अवतार, उसके साथ अनेक कहानियाँ जोड़ दी गईं।

पुनः कहना उचित होगा कि धर्म और ईश्वर के नाम पर एकदम अन्ध भक्त ना बनें, परम्पराओं को जो अवैज्ञानिक हैं, सत्य से परे हैं, काल्पनिक हैं, उनसे मोहभंग करना ही सच्चे ईश्वर की शरण में ले जावेगा। सन्त कबीर के शब्दों में हम पूर्वाग्रह से संचालित होकर उस परमात्मा को नहीं पा सकते।

एक बार कुछ नवयुवकों ने शिवरात्रि का व्रत गंगा नदी में नौका पर मनाने का कार्यक्रम बनाया। जैसी की मान्यता है अधिकांश शिवभक्त भांग, गांजा आदि सेवन करना अच्छा मानते

हैं, उसको शिव का प्रसाद समझते हैं। सभी नवयुवकों ने भांग पी ली, नौका में ढोलक, मंझीरे रख लिए खाने का सामान रख लिया। तैयारी करते-करते भांग का नशा सब पर सवार हो गया। जैसे-तैसे नाव में बैठे, गाना-बजाना शुरू हुआ। नाव चलानेवाले भी भांग के प्रभाव में गीत-संगीत का आनन्द लेते हुए चप्पू चला रहे थे। देर रात तक यही क्रम चलता रहा सुबह होने लगी, भांग का असर कुछ कम हुआ तो देखा कि सारा दृश्य तो उसी घाट का लग रहा है जहाँ से चलना प्रारम्भ किया था। फिर समझ में आया कि अरे! रात भर से नाव का चप्पू चल रहा है, हम समझते रहे कि नौका विहार हो रहा है पर हम तो घाट पर ही खड़े हैं? देखा तो पाया चप्पू तो चलता रहा, गीत-संगीत भी होता रहा, पर घाट पर नाव जिस रस्सी से बंधी थी वह रस्सी तो खोलना ही भूल गए।

इसी प्रकार हमने भी यदि अज्ञानता और अन्धश्रद्धा की गाँठ नहीं खोली तो याद रखना ये जीवन की नैया भी एक जगह ही खड़ी रहेगी, मात्र उसके चलते रहने की कल्पना व भ्रम ही दिलासा देता रहेगा।

पाठकवृन्द! थोड़ा सोचें एक ईश्वर के सम्बन्ध में। वह एक है, इस पर इतने विचार जो विश्व प्रसिद्ध विद्वानों, सन्तों, ग्रन्थों से उल्लेखित किए गए हैं, क्या ये विचार बिना सोचे-समझे ही उन्होंने दिए हैं? ईश्वर का सान्निध्य जीवन का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है, इस पर प्रत्येक मानव को बहुत ध्यान देना चाहिए। उसकी ईश्वर से निकटता सदा बनी रहे तभी यह मानव जीवन सार्थक कहा जा सकता है। आज मानव समाज की दूरियों का कारण अलग-अलग ईश्वर की मान्यता ही है। इसलिए एक ईश्वर को मानना समस्त मानव जाति के संगठन का भी प्रमुख सूत्र है।



तृतीय भाग

ईश्वर कहाँ है ?

आज ईश्वर-दर्शन का अभिलाषी व्यक्ति जगह-जगह निरन्तर भ्रमण करते हुए उसे पाने का प्रयास करने में लगा हुआ है। उसे ढूँढ़ने से पहले यह भूल हो रही है कि जिसे हम ढूँढ़ रहे हैं उसके विषय में यह पता नहीं किया कि वह है कहाँ? क्योंकि किसी को पाने के पहले उसके स्थान को जानना जरूरी है उसके बाद ही उस तक पहुँचने का प्रयास किया जाना उचित है। यदि किसी वस्तु, व्यक्ति या स्थान को प्राप्त करने की उसके निश्चित स्थान की जानकारी नहीं है और उसे पाने का प्रयास करते रहे तो यह परिश्रम व्यर्थ होगा। हो सकता है, जो वस्तु जहाँ है, उसको वहाँ नहीं ढूँढ़ा जाए और इधर-उधर ढूँढ़ते रहें तो फिर उसे हम कभी प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

विशेषकर ईश्वर के सम्बन्ध में इस बात पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है। आज सारा संसार उसे पाने के लिए परेशान हैं, उसे ढूँढ़ रहा है, परन्तु वह कहाँ मिलेगा? किस दिशा में? और कैसे उसको पाया जा सकता है? इस पर कोई निश्चितता नहीं है। हमने उसके कुछ निश्चित स्थान मान रखे हैं, कोई उसे नदी में, कोई तीर्थ स्थान में, कोई मन्दिर या देवालयों में, कोई पहाड़ों पर बने स्थानों पर, कोई समुद्र या नदी के किनारों पर उसका रहना मानकर वहाँ जाकर ढूँढ़ रहा है।

इन स्थानों की प्राकृतिक सुन्दरता से मन को सुख-शान्ति-प्रसन्नता होती है, थकान भी इन सुन्दर दृश्यों से मिट जाती है, यात्रा भी यादगार बन जाती है, किन्तु ईश्वर-दर्शन के लिए ऐसी सब जगह जाने पर भी ईश्वर का साक्षात्कार नहीं हो पाता। ईश्वर नहीं, उसकी प्राकृतिक रचना मन को प्रसन्नता से भर देती

है। स्वर्ग-सी अनुभूति होती है। वास्तव में यही अनुभूति तो उसकी अनुभूति है। ये अद्भुत दृश्य उसकी कृपा का ही स्मरण कराते हैं।

ऐसे स्थान पर जाकर ईश्वर के नहीं उसके नाम पर उसकी कोई मूर्ति, चिह्न या चित्र देखने को ही ईश्वर दर्शन मान लिया जाता है। थोड़ा सोचें, यदि हम ईश्वर के दर्शन किसी स्थान पर करने गए और वहाँ दर्शन कर आए तो फिर दूसरी-तीसरी-चौथी जगह फिर दर्शन करने के लिए क्यों भटकें? क्या वहाँ के ईश्वर से तृप्ति नहीं हुई या उनमें कुछ कमी थी। कई स्थानों पर जाकर मनुष्य जीवन में कई बार ऐसे प्रयास करता है। वह किसी एक स्थान पर जाता है, वहाँ जाने के पश्चात् फिर दूसरे स्थान, फिर तीसरे स्थान और जीवन भर यह क्रम निरन्तर चलते रहता है, परन्तु फिर भी वह अतृप्त ही रहकर संसार से विदा हो जाता है।

ईश्वर को पाने हेतु जब वह हरिद्वार में जाता है, तो हरिद्वार में रहनेवाला ईश्वर को ढूँढ़ने बनारस जाते हुए मिलता है। जब बनारस पहुँचे तो वहाँ रहनेवाला तिरुपति ईश्वर की खोज में जाते हुए मिलेगा। जब तिरुपति गए तो वहाँ का व्यक्ति उसे ढूँढ़ने जगन्नाथपुरी जाता हुआ मिलेगा। यह सत्य है, ऐसा यह देखा गया है। यह कैसी बात है कि हम जहाँ उसे ढूँढ़ने जा रहे हैं, वहाँ का व्यक्ति उसे ढूँढ़ने कहीं और जाता हुआ मिलता है। इस पर कभी विचार ही नहीं किया। ईश्वर के सम्बन्ध में हमें यह विश्वास दिलाया गया कि वह वहाँ है और इसी पर विश्वास करने के कारण ही हम वहाँ जा रहे हैं। यदि यह विश्वास सही हो तो वहाँ का रहनेवाला व्यक्ति दूसरी जगह क्यों जाता है? सारा संसार ऐसे ही प्रयास में लगा हुआ है, घूम रहा है, परेशान हो रहा है, जो जहाँ बता दे वहीं पहुँच रहा है, परन्तु ईश्वर का उसको सानिध्य प्राप्त नहीं हो पा रहा है। अन्त में वह सब कुछ लुटाकर, हारकर रह जाता है और फिर अन्तिम समय तक अशान्त ही बना रहता है।

ईश्वर से दूरी क्यों?

८३

ईश्वर के लिए होनेवाले इन मानवीय प्रयासों को देखकर प्रश्न उठता है क्या वास्तव में ईश्वर को पाना असम्भव है? बहुत कठिन है? इसका उत्तर है—ऐसा बिलकुल नहीं है। यह तो अज्ञानता के कारण समस्या बनी हुई है, क्योंकि हमने न तो ईश्वर के स्वरूप को समझा, न उसकी संख्या का ज्ञान है, न उसके मिलने की जगह का पता हमने कभी लगाया है। इन सब कारणों से हमारा दृढ़ विचार नहीं बन पाया और जब आस्था एक के स्थान पर अनेक स्थानों पर बंट जाती है तो एकाग्रता, लक्ष्य, प्रयास और आत्मविश्वास भी बंट जाता है, जो किसी भी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित नहीं है। वह सफलता में बाधक है और असफलता का कारण है।

ईश्वर के बारे में हमारी कुछ ऐसी ही स्थिति है—

भ्रमित हो चौराहे पर, मंजिल ढूँढ़ रहे हैं।

जिसे पाना चाहते, उसी के नीचे खड़े हैं ॥

कई बार ऐसा देखा गया कि वस्तु पास में रखी है फिर भी हम उसे ढूँढ़ रहे हैं। एक बार एक सज्जन बड़े परेशान होकर कुछ ढूँढ़ रहे थे ऑफिस के कर्मचारी ने पूछा—भाई, क्या ढूँढ़ रहे हो? तब वे बोले मुझे डाक्यूमेंट चेक कर टाईपिंग के लिए देना है और मेरा चश्मा नहीं मिल रहा है। उनके इस वाक्य को सुनकर अन्य कर्मचारी उनकी ओर देखकर जोर से हँसने लगे। तभी उन्हें ख्याल आया अरे! चश्मा तो उन्होंने सिर पर चढ़ा रखा है।

चश्मा तो पास ही था किन्तु फिर यहाँ चश्मा ढूँढ़ने का क्या कारण था? क्योंकि उनको चश्मा पास होने का ज्ञान नहीं था। कोई वस्तु पास में रखी है किन्तु उसके होने का यदि हमें ज्ञान नहीं है तो वह पास होते हुए भी हमसे दूर हो जाती है।

भटक रहे हैं उसे ढूँढ़ने के लिए परन्तु वह मिलता ही नहीं और खोज जारी है। मिले कैसे, उस स्थान पर नहीं देखा जहाँ ढूँढ़ना था, जिस प्रकार ढूँढ़ना था। वहाँ उसे तलाश ही नहीं किया, जहाँ वह रहता है। हमारे जीवन में कई बार पढ़ने, सुनने

का अवसर आता है कि परमात्मा घट-घटवासी है, परन्तु वाणी का परिश्रम करके बस घट-घटवासी बोल दिया, उसके अर्थ को समझा ही नहीं। घट-घटवासी का तात्पर्य मन में, आत्मा में, इस पंचभूत से बने मानव चोले में है यह है। वह हमारे अन्दर ही हमारे हृदय में विद्यमान है और इस बात पर पूर्ण विश्वास है तो फिर उसे इधर-उधर क्यों ढूँढ़ेंगे ? परन्तु यह सिर्फ वाणी तक सीमित है, मन व बुद्धि से दूर हैं। किन्तु उसे बाहर ढूँढ़ रहे हैं, दूसरी जगह, यहाँ-वहाँ, जाने कहाँ-कहाँ ! पृथ्वी पर, पाताल में, आकाश में, जहाँ मर्जी हो उसका स्थान मान लिया और वहीं ढूँढ़ने चल दिए।

उस परमात्मा को हम सर्वव्यापी कहते हैं। इन शब्दों पर जरा विचार करें तो हमारी भूल का एहसास हो जावे। सर्वव्यापक का अर्थ प्रत्येक स्थान से है, जर्रे-जर्रे से है। सर्वव्यापकता में, जल-थल-नभ, सभी दिशाएँ, सभी स्थान, सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड आ जाता है। ईश्वर सर्वव्यापक है और उसका निवास हृदय में बताया गया, यह संसार के महान् सन्तों ने, दार्शनिकों ने, विद्वानों ने, शायरों ने बताया है जिन्हें हम श्रेष्ठ मानते हैं। वेद, उपनिषद्, गीता, रामायण आदि ने भी उसे हृदयवासी व सर्वव्यापक बताया है, किन्तु इस पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है।

परमात्मा यत्र-तत्र-सर्वत्र है, उससे ऐसा कोई स्थान बचा हुआ नहीं है जहाँ वह मौजूद न हो। सम्पूर्ण रचना उसकी कृति है। ये सूर्य, चन्द्र, आकाश, पृथ्वी, बड़े-बड़े समुद्र, अनन्त सृष्टि सब कुछ का वही एक मात्र स्वामी, अधिपति, संचालक, निर्माता है। सम्पूर्ण जगत् उससे आच्छादित है। वेद ईश्वरीय ज्ञान है, विश्व की पहली संस्कृति, विश्व का पहला दर्शन, ज्ञानकोष व अध्यात्म वेद संहिता है। वेद परमात्मा की वाणी है। यजुर्वेद के ४०वें अध्याय का प्रथम मन्त्र इसकी पुष्टि करता है।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।

—यजु० ४०।१

यह समस्त जगत्, समस्त रचना, ईश्वर के अन्तर्गत है

ईश्वर से दूरी क्यों?

८५

अर्थात् सभी ओर ईश्वर का सांप्राज्य है, उसके अन्तर्गत ही सब कुछ है।

परमात्मा कहीं और नहीं, हमारे पास ही है, बहुत पास है। वेद का एक और मन्त्र बहुत सार्थक विचार इस सम्बन्ध में देता है—

अन्ति सन्तं न जहात्यन्ति सन्तं न पश्यति।

देवस्य पश्य काव्यं न ममारु न जीर्यति॥

—अथर्व० १०।८।३२

अर्थात्—परमात्मा हमारे इतना निकट है कि हम उसे देख नहीं पाते हैं, जो इतना निकट है, उसे छोड़ भी नहीं सकते। अतः परमेश्वर को देखना है और उसे छोड़ना नहीं चाहते तो परमेश्वर की उस कृति को देखो—काव्यरूपी वेद को देखो, वह कभी जीर्ण नहीं होता, न कभी मरता है।

योगिराज श्री कृष्ण ने अर्जुन को ईश्वर के स्थान के सम्बन्ध में उपदेश देते हुए मिलने के स्थान के सम्बन्ध में कहा है—

ईश्वर सर्वभूतानां हृद्देशे अर्जुन तिष्ठति।

—गीता १८।६१

अर्थात्—हे अर्जुन! ईश्वर इस पंचभूत से बने शरीर के हृदय में निवास करता है। विश्व प्रसिद्ध सन्त तुलसीदासजी ने भी प्रभु की सर्वव्यापकता को बताते हुए कहते हैं—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना।

प्रेम ते होई प्रकट मैं जाना॥

पुनः आगे कहा है—

एक अनिह अरूप अनामा।

अज सच्चिदानन्द परधामा।

व्यापक विश्वरूप भगवाना॥

जो परमेश्वर एक है, जिनकी कोई इच्छा नहीं है, जिनका कोई रूप और नाम नहीं है, जो अजन्मा, सच्चिदानन्द और परमधाम है, और जो सबमें व्यापक और विश्वरूप है। (तुलसी

रामायण तो पढ़ी, कई बार पढ़ी किन्तु समझकर नहीं पढ़ी केवल आध्यात्मिक भावना से उसके मात्र पाठ तक सीमित रह गए। जिस रामायण को हम इतनी अधिक मान्यता देते हैं उसमें वर्णित इन पंक्तियों पर विश्वास क्यों नहीं करना चाहिए?)

सन्त नानकदेवजी ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हुए कहते हैं—

एको सिमरो नानका, जो जल-थल रहा समाय।

दूजा कोहि सिमिरिये, जो जन्मे ते मर जाए॥

उसका स्मरण करो जो जल-थल सभी स्थानों पर व्यापक है। जो जन्म लेता है और मर जाता है, उसे क्यों पूजते हो? वह परमात्मा तो सर्वव्यापक है। अपने स्वयं में अन्दर ही उसे पाया जा सकता है। कहा गया—परमात्मा बाहर से दिखाई देनेवाली वस्तु नहीं है, वह तो हमारे अन्दर ही है, उसकी अनुभूति करनी होती है, जैसे—

ज्यू तिल माहि तेल है, ज्यू चकमक में आग।

तेरा प्रभु तुझमें बसे, जाग सके तो जाग॥

हम कहाँ ढूँढ़ रहे हैं उस परमात्मा को? कभी इस पर गम्भीरता से चिन्तन नहीं किया, क्या कर रहे हैं, इसकी चिन्ता नहीं की।

नचिकेता का नाम संसार के विद्वानों, बुद्धिमानों और तार्किकों की अग्र पंक्ति में गिना जाता है। नचिकेता और यमाचार्य के संवाद को विद्वान् बड़ा प्रामाणिक मानते हैं, एक स्थान पर नचिकेता से यमाचार्य ने ईश्वर के सम्बन्ध में प्रश्न किया तथा पूछा वह कहाँ रहता है? इसका बड़ा सुन्दर उत्तर देते हुए नचिकेता ने बताया है—

पातालं न च विवरम् गिरीणां।

नैवाधंकारो न कुक्षं दधीनाम्॥

गुहा यस्याम् निहितं ब्रह्म शाश्वतं।

त्वभूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः॥

ईश्वर से दूरी क्यों?

८७

विद्वान् नचिकेता ने बताया कि वह परमात्मा पाताल में, अन्धेरी में, पहाड़ों की कन्दराओं या समुद्र में नहीं रहता है, वह तो तुम्हारे पंचभूतों से बने इस शरीर में ही देखा जा सकता है।

थोड़ा सोचें विद्वानों ने जो विचार दिए, क्या वे बिना सोचे-विचारे ही दिए हैं? जो कुछ कहा वह बिना आधार के कहा? इन विचारों को संसार के अनेक विद्वान्, योगी, सन्त, विचारक श्रेष्ठ बताते हैं तो क्या बिना किसी आधार के ही बताते हैं?

हम गम्भीरता से सोचें, विचार करें कि समाज के प्रतिष्ठित विद्वान् यह कह रहे हैं कि परमात्मा को इधर-उधर मत ढूँढ़ो उसका निवास तो हृदय में है, तो हम इसे क्यों नहीं मानें? विद्वानों, सन्तों, धर्मग्रन्थों के विषय में हमारी एक बड़ी अजीब बात है, हम उनको तो मानते हैं, उनके चित्र भी लगाते हैं, जयन्ती मनाते हैं, उनकी जय-जयकार करते हैं, पूजा तक करते हैं, किन्तु हम उनके बताए मार्ग पर नहीं चलते। यह विचित्र बात है कि उन्हें तो मानते हैं पर उनकी नहीं मानते हैं। वास्तव में यह उनकी अवहेलना है, उनका निरादर है, फिर तो उनकी जय बोलना, चित्र लगाना सब दिखावा है। यदि हम उन महापुरुषों को श्रेष्ठ, विश्वासयोग्य मानते हैं, उन पर विश्वास करते हैं, तो उनकी बातों को भी मानें। परमात्मा को अपने से दूर ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है किन्तु वह परमात्मा जहाँ पाया जा सकता है, वहाँ नहीं ढूँढ़ते हैं। जैसे—

एक बूढ़ी माता थी वह गाँव के चौराहे पर जमीन पर कुछ ढूँढ़ रही थी। देखनेवाले कुछ नवयुवक वहीं किसी ओटले पर बैठे थे। जब काफी समय हो गया और युवकों को लगा कि ये वृद्धा परेशान होकर जमीन पर गिरी कोई वस्तु ढूँढ़ रही है जो इसे मिल नहीं रही है, यह सोचकर नवयुवकों ने बुढ़िया की मदद करने की भावना से बुढ़िया से पूछा, “अम्मा! आप क्या ढूँढ़ रही हैं। काफी देर हो गई? हमें बताइए आपकी मदद करेंगे।” बुढ़िया बोली, वेटा मेरी सूई गिर गई है उसे ढूँढ़ रही हूँ। वृद्धा की बात सुनकर नवयुवक भी सूई ढूँढ़ने लगे। ढूँढ़ते

हुए काफी देर के पश्चात् भी जब सूई नहीं मिली, तब उनमें से एक युवक ने पूछा माता यहां तो तेरी सूई मिल ही नहीं रही है, जरा याद करके बता कि आखिर वह सूई गिरी कहाँ थी ? वृद्धा ने कहा बेटा सूई तो मेरी कोठरी में गिरी थी। नवयुवकों ने सिर पर हाथ लगाते हुए कहा—“अरी अम्मा ! तूने अपना भी समय बिगाड़ा और हम सबका भी। जब सूई कोठरी में पड़ी थी तो यहाँ ढूँढ़ने का क्या मतलब था, क्यों व्यर्थ ही मेहनत की ?”

परन्तु यह कहानी केवल उस बुढ़िया की नहीं है, ईश्वर के सम्बन्ध में आज यही हर मस्तिष्क की कहानी है। परमात्मा रहता कहीं है और ढूँढ़ते कहीं हैं। ईश्वर की सर्वव्यापकता की यह बात संसार के महान् चिन्तक, विद्वान्, वेद-प्रचारक, जगद्गुरु स्वामी शंकराचार्य ने अपनी रचना “परापूजा” में लिखी—

सर्वाधारो निराधारः सर्वव्यापक ईश्वरः ।

प्राणादि प्रेरकत्वेन जीवने हेतुरेव च ॥

अर्थात्—परमात्मा सर्वाधार=सबका आधार है, सभी जगह व्याप्त है, सर्वव्यापक है, प्राणों का प्रेरक है, जीवों का कारण है। क्या स्वामी शंकराचार्य की बुद्धि व ज्ञान पर भी हम कोई संशय रखते हैं ?

सर ओलीवर लॉज अपने समय के सबसे बड़े वैज्ञानिक तथा Royal Society तथा British Association for the Advancement of Science के प्रधान थे। उन्होंने एक निबन्ध में लिखा—

“We are deaf and dumb to the infinite grandeur around us unless we have insight to appreciate the whole and so to recognise in the woven fabric of existence flowing steadily from the loom in an infinite progress towards perfection the evergrowing garment of a transcendent God.”

(Is modern Intelligence out growing God' by V.T.

sunderland Page 197)

ईश्वर से दूरी क्यों?

८९

अर्थात्—हम अपने चारों ओर जो असीम सौन्दर्य पाते हैं उसके विषय में हम बहरे और गूँगे रहते हैं। जब तक कि हमारे अन्दर समस्त जगत् के महत्त्व को समझने और उसके अन्दर ओत-प्रोत सर्वव्यापक परमेश्वर की सत्ता को स्वीकार करने की आन्तरिक दृष्टि व बुद्धि न हो।

हेनरी डूमण्ड नामक वैज्ञानिक ने लिखा है कि—“Evolution shows god is everywhere”—विकास सर्वत्र ईश्वर को दिखाता है।

परन्तु अज्ञानतावश जिस परमात्मा का साम्राज्य समस्त ब्रह्माण्ड है, हर स्थान पर है, उसे हम कुछ निश्चित स्थानों में ही सीमित मानें, तो यह उसका अवमूल्यन हैं। जैसे किसी देश के राजा का साम्राज्य सम्पूर्ण देश में होता है किन्तु सम्पूर्ण देश न मानते हुए उसे कुछ ग्रामों या नगरों तक सीमित कर दिया जावे तो उसकी शक्ति को कम करना है, उसकी शक्ति की पूर्ण जानकारी न होने या उसके सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी न होने से अज्ञानतावश ऐसा होगा। ठीक इसी प्रकार परमपिता परमेश्वर को जगदीश कहते हैं, जो जगत्+ईश से बना है, उसकी शक्ति, साम्राज्य, उसकी महानता को कम करना है।

इसी भ्रम में उलझकर ईश्वर को ढूँढ़ने में ही सारी उम्र बिता दी परन्तु हाथ कुछ नहीं लगा। जहाँ ढूँढ़ना था, वहाँ तो ढूँढ़ा ही नहीं, तो फिर उसे कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

अज्ञानतावश बिना सही ज्ञान के कितना भी कोई परिश्रम कर ले उसका परिणाम ठीक आनेवाला नहीं है। मात्र श्रद्धा के नाम पर जिन्दगी भर उपवास, व्रत, यात्राओं के करने से उसकी प्राप्ति नहीं हो सकती। ऐसा परिश्रम केवल मन को समझाने के लिए किया हुआ सिद्ध होगा।

दूरी तीन प्रकार की होती है, समय की, स्थान की, ज्ञान की। पाठकवृन्द! थोड़ा ध्यान देवें परमेश्वर नित्य है और आत्मा भी नित्य है, इसलिए हमारे और उसके बीच में समय की दूरी नहीं हो सकती, सर्वव्यापक है कण-कण में बसा है, ऐसा कोई

स्थान नहीं जहाँ वह नहीं रहता हो। इसलिए हमारे और उसके बीच स्थान की दूरी भी नहीं हो सकती। किन्तु फिर भी दूरी है तभी तो उसे ढूँढ़ रहे हैं। वास्तव में उसका ठीक-ठीक ज्ञान न होने से उसके और हमारे मध्य ज्ञान की दूरी है जो हमें पास रहते हुए भी एक दूसरे से दूर रख रही है। कृपया इस उदाहरण से समझने का प्रयास करें—

एक सेठ थे उनके पास बहुत कीमती हीरा था। उसे वह बेचना चाहते थे। अच्छी कीमत मिल सके इसलिए उसने सोचा यदि किसी बड़े शहर में जाकर इस हीरे को बेचूँगा तो ठीक कीमत आ जावेगी और वहाँ कोई निश्चित रूप से हीरा खरीद ही लेगा। इस विचार से वह एक बड़े शहर में चला गया। कई दुकानों पर जाकर बताया परन्तु हीरे के ठीक दाम नहीं मिल रहे थे। इस प्रयास में कई दिन बीत गए परन्तु हीरे का उचित दाम देनेवाला कोई खरीददार नहीं मिला।

सेठ की इस स्थिति को एक ठग देख रहा था। उसके मन में विचार आया कि यदि मैं इस सेठ से किसी प्रकार यह हीरा प्राप्त कर लूँ तो जीवन ठीक-ठाक बीत जावे और गरीबी दूर हो जावे। इस विचार से ठग ने सेठजी से सम्पर्क कर कहा—सेठजी! मैं यहाँ कई बड़े व्यापारियों को जानता हूँ हीरा बिकवाने में मैं मदद करूँगा; आप मेरा सहयोग लीजिए बदले में मेरा मेहनताना दे देना, ऐसा प्रस्ताव रखा। सेठजी ने ठग की बात मानी और उससे सहयोग लेने लगे। ठग दिनभर सेठजी के साथ रहता, कई दुकानों पर उन्हें ले जाता और रात्रि में भी वह सेठजी के साथ ही उसी कमरे में रुक जाता जहाँ सेठ सोते थे। यह क्रम काफी दिन चला परन्तु सेठजी को हीरे का उचित दाम नहीं मिल रहा था। अन्त में सेठजी ने अपने घर आने का निर्णय लिया और उस ठग से जो सेवक के रूप में सहयोग कर रहा था उसे कुछ पैसा देना चाहा।

ठग तो सेठजी के जाने से उदास था क्योंकि हीरा तो वह ले नहीं पाया। उसको अपना भारी नुकसान लग रहा था। उसने

ईश्वर से दूरी क्यों?

९१

सेठजी से कहा मुझे कोई पैसा नहीं चाहिए पर तुम मुझे एक बात बता दो कि रात में तुम हीरा कहाँ रखते थे? मैं रातभर उसे ढूँढ़ता रहा, रात-रात भर जागा पर हीरा कहीं नहीं मिला, इस बात का मुझे आश्चर्य हो रहा है।

सेठजी ने उसे बताया, अरे बावले! देख, रात्रि में तू और मैं जब सोने जाते थे उसके पहले मैं अपना कुर्ता निकालकर इस खूँटी पर टांग देता था और तू अपनी कमीज उस पर टांग देता था। जब तू कमीज टांग देता उसके बाद मैं तुझसे पीने के लिए पानी माँगता या किसी काम से बाहर भेज देता था। सेठजी ने कहा, बस, जब तू पानी लेने जाता था उस समय मैं हीरा तेरी कमीज की जेब में डाल देता। तू रातभर मेरा कभी कुर्ता टटोलता, कभी बिस्तर, कभी पेटी में देखता रहा। पर कभी तूने अपनी जेब नहीं देखी। ठग मन ही मन अपने को कोसने लगा, हाय रे मेरी बदकिस्मती, सब जगह देखता रहा, पर अपनी ही जेब नहीं ढूँढ़ी जिसमें हीरा था।

आज हमारी भी ठीक यही स्थिति है, ईश्वर के रहने का स्थान तो मन-मन्दिर है, परन्तु वहाँ तलाश किया नहीं और ढूँढ़ते फिरे सारे जमाने में इसी बात को समझकर एक उर्दू के शायर ने लिखा—

ढूँढ़ता किस वास्ते गाफिल, यूँ घर-घर देखता।

पहले ही गर जेरे बगल दिलवर अपना देखता ॥

साफ कर देता सीने के आईने का जंग अगर।

तो लाखों पर्दों से वो पर्दानशीं आता नजर ॥

आर्यजगत् के बड़े प्रसिद्ध भजनोपदेशक कविरत्न प्रकाशजी ने बड़ी सुन्दर व सार्थक पंक्तियाँ लिखी—

फूलों में ज्यूँ सुवास, ईख में मिठास है।

परमात्मा का विश्व के कण-कण में वास है।

टुक ज्ञानचक्षु खोलकर तू देख तो सही

जिसको तू ढूँढ़ता था, सदा तेरे पास है।

आनन्द स्रोत बह रहा, पर तू उदास है।

अचरज है जल में रहकर, मछली को प्यास है।

ईश्वर को सर्वव्यापक, सब जगह, सब दिशाओं में मानना ही उसके वास्तविक स्वरूप के अनुरूप मानना होगा। वह असीम है, जिसकी कोई सीमा नहीं है, किन्तु यदि ऐसा नहीं मानते हैं तो उसको हम सीमित कर रहे हैं। उसकी शक्ति का व उसका आकलन हमने गलत किया है।

एक उर्दू के शायर ने बहुत खूब लिखा है—

गंगा में भी हर हैं, आबे जम जम में भी हर हैं।

पूरब में भी, पश्चिम में भी, महबूब का घर है ॥

तू बहम में पड़ा है, कि इधर है या उधर है।

पर हर सिन्त से नाजिर की तुझ पर नजर हैं ॥

अर्थात्—वह हर अर्थात् ईश्वर भारत की गंगा हो या पाकिस्तान की आबे जमजम, पूरब हो या पश्चिम, सभी में परमात्मा का निवास है। वहम में व्यर्थ पड़े हैं कि वो इधर है या उधर है किन्तु हर दिशा से उसकी हम पर निगाह हैं।

कृपया इस स्वरचित रचना को देखें—

गंवा दी उमर पूरी तुझे पाने में।

ढूँढ़ता फिरा, सारे जमाने में ॥

जाने कितने उपवास, व्रत कर डाले।

घूमे जाने कितने मंदिर और शिवाले ॥

तीरथ स्नान जिन्दगी भर करता रहा।

शरीर को तपा धूप, सर्दी सहता रहा ॥

नाम से तेरे लुटता रहा, धर्म के ठेकेदारों से।

चढ़ावा, चढ़ाता रहा, वहाँ मैं हजारों से ॥

पर तू तो दाता है, सबका भण्डार तू।

देवता तू और पालन हार तू ॥

ये सब बाहर की आँखों ने करवाया।

ज्ञान चक्षु का, ख्याल ही नहीं आया ॥

ढूँढ़ना था जहाँ बस वहीं ढूँढ़ा नहीं तुझे।

भटका दिया, उलझा दिया जमाने ने मुझे ॥

पहले ही अगर मन-मंदिर में तुझे देखा होता ।

तो तेरे नाम पर नहीं होता ये धोखा ॥

देखा जब ? अन्दर की आँखें खोल, तो तुझे हरदम वहाँ पाया ।

तू इतना करीब था कि प्रकाश, तुझे समझ ही नहीं पाया ॥

कस्तूरी मृग की स्थिति में यह समाज जी रहा है । कस्तूरी मृग, कस्तूरी की सुगन्ध को पाने के लिए जंगल-जंगल भटकता है परन्तु उसे प्राप्त नहीं कर पाता है । और उसे प्राप्त करने की इच्छा से ही किसी झाड़ी में उलझकर या पहाड़ी से गिरने से उसका प्राणान्त हो जाता है । जबकि कस्तूरी उसी हिरण की नाभि में होती हैं । यहाँ मृत्यु उसकी अज्ञानता का ही कारण बनी । इसलिए परमात्मा को अपने से बाहर कहीं मत ढूँढ़ो, उसका स्थान आत्मा के पास ही है । एक प्रसिद्ध गीत सुना ही होगा—

तेरे पूजन को भगवान्, बना मन-मंदिर आलीशान ॥

बस मन-मंदिर में ही उसके दर्शन करो । परमात्मा की सृष्टि को बाहरी आँखों से, और उस परमात्मा को अन्दर की आँखों से देखा जा सकता है । तभी तो भक्त परमात्मा की भक्ति के समय बाहरी वस्तुओं से नाता तोड़ आँख मूंद लेता है और अन्दर की ओर देखता है । यदि बाहर ही देखता रहता है, तो अन्दर नहीं देख पाता । वह हर वक्त, हर जगह हमारे साथ है, उसे ढूँढ़ने कहीं और जाने की आवश्यकता नहीं है, जब चाहो उससे मिल सकते हो, क्योंकि—

दिल के आईने में हैं, तस्वीरें यार की ।

बस जरा गर्दन झुकाई, देख ली ॥

ईश्वर कितने पास है और कितने दूर है, वेद के द्वारा बताया गया है । इस मन्त्र को समझें—

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके ।

तदुन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

—यजु० ४०।५

अर्थात्—वह परमात्मा चलायमान नहीं किन्तु मूर्ख उसे चलायमान, गतिमान् मानते हैं, उसमें गति नहीं है, वह सबको गति देता है। वह अधर्मात्माओं, अज्ञानियों और मूर्खों से दूर है जो उसे ढूँढ़ते हैं किन्तु विद्वान् धर्मात्मा और योगियों के समीप है। वह सब जीवों के भीतर भी और बाहर भी, तथा प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष जगत् के अन्दर भी है और बाहर भी विद्यमान है। परमात्मा सब जगह है, ज्ञानियों के पास व अज्ञानियों से दूर है।

सुधी पाठकवृन्द! परमात्मा की प्राप्ति और उसका सान्निध्य प्राप्त करने के लिए भटकाव को छोड़ सत्य मार्ग चुनना होगा। भौतिक आँखों से नहीं, ज्ञानचक्षु से देखना होगा। उसे भौतिक रूप में किसी व्यक्ति वस्तु के समान दिखाई देने के भ्रम को छोड़ना होगा। उसे तो उसकी अनुभूति करके देखा जा सकता है।

परमात्मा का स्वरूप भौतिक नहीं हो सकता, क्योंकि वह सदा है, सदा रहेगा, वह कभी बूढ़ा कमजोर या नष्ट नहीं हो सकता। किन्तु संसार में जितनी भी वस्तुएँ स्थान, वन, वनस्पति, पहाड़, जल-स्रोत हैं वे सदा एक से नहीं रह सकते। कभी न कभी अपना रूप बदलेंगे या वर्तमान अस्तित्व खोकर नवीन स्वरूप को प्राप्त करेंगे। यह भौतिक वस्तुओं का गुण है। इसलिए परमात्मा को भी भौतिक रूप में सोचना उचित नहीं है, वह तो अपरिवर्तनशील है अनुभूति का विषय है, इन चर्मचक्षुओं का विषय नहीं है। इस पर दृढ़ विश्वास करें।



चतुर्थ भाग

ईश्वर क्या करता है ?

परमात्मा के कार्य विलक्षण हैं, अद्वितीय हैं, बिना किसी भेदभाव के सबके लिए हैं। वह जो करता है वह कार्य, कोई दूसरा नहीं कर सकता है। समस्त विश्व मिलकर भी नहीं कर सकता। ईश्वर के कार्यों के सम्बन्ध में भ्रान्ति अधिक फैली हुई है। ईश्वर की कृपा को लेकर भक्तों की सहायता को लेकर कई कहानियाँ प्रचलित होकर कई ग्रन्थ निर्मित हो चुके हैं।

धार्मिक आयोजनों में भक्त और भगवान की कहानियाँ सुना-सुनाकर ईश्वर को भक्तों के अधीन बता दिया। ऐसी ही मान्यता है कि माला, अगरबत्ती, नारियल भेंट चढ़ाने से इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है, अर्थात् भगवान् को कुछ भेंट देकर, उसके नाम पर जप करवा के, उपवास करके कुछ भी प्राप्त किया जा सकता है। ऐसा प्रचार-प्रसार वर्षों से हो रहा है और अनेक व्यक्ति इस विचारधारा में चल रहे हैं।

अब तो इसका प्रचार और बढ़ गया है, समाचार व टी०वी० चैनल रात-दिन इस हेतु मन्त्रों से जड़ी अंगूठी और यन्त्र-तन्त्र का प्रचार करते हैं, जिनको अपनाने से मनवांछित फल प्राप्त होता है। किन्तु यह मिथ्या प्रचार है, ईश्वर को मान, प्रतिष्ठा, राग-द्वेष, चापलूसी, रिश्वत से कोई सरोकार नहीं। इन सब से मनुष्य प्रभावित होता है, ईश्वर नहीं?

आज संसार इसी भावना से ईश्वर की भक्ति और उसकी उपासना करता है। परिणामस्वरूप मनुष्य सत्य आचरण से दूर होकर भी बिना कुछ किए मात्र परमात्मा की स्तुति करके, चढ़ावा चढ़ाकर, पूजा-पाठ करके सब कुछ पाने की इच्छा रखता है। इस मान्यता ने मानव को उसके कर्तव्यों से विमुख

कर दिया और अकर्मण्य बना दिया। ईश्वर के कार्यों की जब हमें ठीक से जानकारी हो जावे तो उसका महत्त्व हमारे लिए और बढ़ जाता है उसके प्रति हम सदा नतमस्तक रहेंगे।

परमात्मा के गुण और कार्यों का अवलोकन करने पर विद्वानों ने मुख्यतः परमात्मा के ४ कार्य बताए हैं। ये कार्य केवल परमात्मा ही कर सकता है, अन्य किसी और का सामर्थ्य नहीं है। मनुष्य कितना भी बड़ा हो जावे, किन्तु उसकी तुलना परमात्मा से नहीं की जा सकती। इसलिए सर्वप्रथम देखते हैं, परमात्मा क्या करता है।

परमात्मा के प्रमुख चार कार्य हैं—

१. सृष्टि का निर्माण करना,
२. सृष्टि की रक्षा व पालन करना,
३. सृष्टि का प्रलय करना,
४. और प्रत्येक व्यक्ति को उसके कार्यों का फल देना।

ईश्वर के अतिरिक्त इन कार्यों को करनेवाली संसार में अन्य कोई शक्ति नहीं हो सकती। मन में जब यह विचार दृढ़ हो जावे तो परमात्मा की विशालता का व शक्ति का अनुमान लगा सकते हैं, फिर उसके स्थान पर किसी दूसरे की उपासना नहीं होगी।

आज तो साधारण-सी क्षमता रखनेवाले, हाथ की सफाई रखनेवाले व्यक्तियों को भी भगवान् कहकर सम्बोधित किया जा रहा है। ईश्वर के स्थान पर अल्पज्ञ देहधारी मनुष्य की भी पूजा हो रही है, हजारों व्यक्ति भगवान् बने हुए हैं। आज इस देश में भगवान् कहलानेवाले व्यक्तियों की संख्या सैकड़ों में पहुँच चुकी है और आगे भी कहाँ जाकर रुकेगी अभी इसका अनुमान भी नहीं है।

ईश्वर, परमपिता, प्रभु को भी भगवान् कहते हैं। यदि इस एक ईश्वर को भगवान् के नाम से पुकारें और उसी जगनियन्ता को ही सम्बोधित करें तो यह भगवान् ईश्वर के लिए माना जाना चाहिए, जो ठीक भी है।

किन्तु भगवान् शब्द का प्रयोग संसार के उन तमाम महापुरुषों,

विद्वानों के लिए भी किया जाता है जिनके जीवन में किए गए कर्म महान् थे, जनसाधारण के कार्यों से ऊपर उठकर आदर्शमय थे। जिन्होंने निष्काम भाव से समाज को कुछ दिया है और इस आदर्शमय पवित्र चरित्र को समाज ने सम्मान प्रदान कर भगवान् कहा।

भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् महावीर, भगवान् बुद्ध आदि कई नाम हैं जिनका जीवन आदर्श बन गया। किन्तु इन्हें ईश्वर की संज्ञा नहीं दी जा सकती। इनके प्रति आदर्श भाव, सम्मान के भाव, सदा स्मरणीय भाव होना अच्छा है, किन्तु जगनियन्ता के रूप में नहीं माना जाना चाहिए।

जीव अल्पज्ञ हैं, परमात्मा सर्वज्ञ हैं, जीव की शक्ति सीमित है, परमात्मा सर्वशक्तिमान् है, आत्मा को देह धारण करनी होती है, किन्तु परमात्मा को नहीं, वह निराकार है। जीवात्मा को सुख-दुःख, राग-द्वेष होता है, परमात्मा इन सबसे ऊपर हैं। वह सदा आनन्दस्वरूप हैं, इसलिए उसे सत्-चित्-आनन्द (सच्चिदानन्द) कहा जाता है।

ईश्वर सर्वज्ञ है, सर्वव्यापक है, कण-कण की, हर क्षण की उसे जानकारी है, क्योंकि उसके अन्तर्गत यह पूरी सृष्टि है।

अनेक भगवानों की पूजा हो रही है, अनेक चित्रों और स्टेच्यू को बड़ा चमत्कारी माना जा रहा है।

आज संसार में अनेक बड़ी-बड़ी दुर्घटनाएँ हो रही हैं। संसार अनेक कारणों से दुःखी है। बाढ़ से, भूकम्प से, मानवीय अत्याचारों से। गुजरात का भूकम्प, सुनामी का कहर, आतंकवादियों की क्रूरता, सूखे व बाढ़ से लाखों जन-जीवन पीड़ित हुए हैं। जब इतने भगवान अभी यहाँ पल रहे हैं, तो आश्चर्य है, किसी को भी इन घटनाओं का पूर्वाभास नहीं हुआ? यदि नहीं हुआ तो फिर इन्हें सर्वज्ञ व सर्वव्यापक कैसे मानेंगे, जो परमात्मा का प्रमुख गुण है। और यदि इन्हें जानकारी थी और फिर भी अपने लाखों भक्तों को इसकी जानकारी नहीं दी, तो इनसे बड़ा क्रूर, पापी कोई नहीं हो सकता है।

इसलिए उस ईश्वर को जैसा हमारे महापुरुषों ने और विश्व

के सर्वोत्तम व सम्पूर्ण ज्ञान के भण्डार वेद ने बताया है, उस पर विश्वास कर एक विचार बनाकर जीवन को सफल बनावें और ईश्वर का प्रतिक्षण सान्निध्य प्राप्त करें। ईश्वर क्या करता है, इसे समझें—

ईश्वर सृष्टि की रचना करता है—इस समस्त ब्रह्माण्ड का रचयिता केवल परमेश्वर है, जगत्पति भी वही है, अन्य कोई नहीं। इस पुस्तक में 'ईश्वर कैसा है', शीर्षक में हमने ईश्वर की महानता को पढ़ा जिसमें ईश्वर ही समस्त जगत् का रचयिता है। यह इस वेद मन्त्र से भी स्पष्ट होता है—

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्व स्तभितं येन नाकः ।

योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

—यजु० ३२।६

अर्थात्—जिस परमात्मा ने तीक्ष्ण स्वभाववाले सूर्य और पृथ्वी को धारण किया है जिससे सुख को, दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, वह सब लोक-लोकान्तरों को विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं वैसे सब लोकों का निर्माण और भ्रमण कराता है। हम लोग उसकी उपासना करें।

पुनः देखें वेद मन्त्र में ईश्वर द्वारा रचना सम्बन्धी वर्णन—

यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवं ।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥

—अथर्व० १०।७।३४

अर्थात्—जिसने ब्रह्माण्ड की वायु को प्राण-अपान, प्रकाशक किरण को चक्षु और दसों दिशाओं को सब व्यवहार सिद्ध करनेवाली बनाया है। अनन्त विद्यायुक्त सब मनुष्यों के इष्ट देव उस ज्येष्ठ ब्रह्मा को हमारा नमस्कार।

ईश्वर सृष्टि की रचना करता है व पालन करता है—माता-पिता, आचार्य के रूप में वह हमारा पालक है, अनेक प्रकार का ज्ञान देकर उस परमात्मा ने हमें अपनी और सृष्टि की रक्षा करने का ज्ञान दिया, वही अपनी दया से हमारा पालन व सुरक्षा करता है।

परमात्मा ही सबका पालक व रक्षक है। इस सम्बन्ध में सामवेद के इस मन्त्र में बताया गया। वह परमात्मा सृष्टि-निर्माता है। इसकी चर्चा इस वेद मन्त्र में की गई है—

अग्ने^{२३} जरितर्विश्वपतिस्तपानो^{१२३} देव^३ रक्षसः^{३१२}।

अप्रोषिवान् गृहपते महो^{१२} असि दिवस्यायुदुरोणयुः^{३२३१२३२}॥

—सामवेद ३९

अर्थात्—हे संसाररूपी गृह के स्वामी परमेश्वर! तू प्रजा का पालक, दुष्टों को तपानेवाला, दण्ड देनेवाला, सदा रहनेवाला, महान् द्यूलोक का रक्षक तथा संसाररूपी गृह का निर्माता है।

सृष्टि का प्रलय करता है—परमात्मा ही सृष्टि का प्रलय भी करता है। वर्तमान सृष्टि के पूर्व भी इस प्रकार की रचना होती रही और फिर उसका अन्त हुआ। फिर सृष्टि का निर्माण हुआ यह अनवरत क्रम ईश्वर की व्यवस्था के अन्तर्गत है। सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि प्रवाह से अनादि है इस मन्त्र से यह बात और अधिक स्पष्ट होती है—

सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।

दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

—ऋ० १०।१९०।३

अर्थात्—परमात्मा ने जगत् को उत्पन्न करके धारण किया, उसकी रक्षा कर पालन किया, फिर उसने सूर्य-चन्द्रमा आदि ग्रहों को उत्पन्न करके धारण किया। द्यूलोक, पृथिवी, अन्तरिक्ष लोकों का और ब्रह्माण्ड का निर्माण किया। उस प्रकार बनाया जिस प्रकार इससे पहली सृष्टि में थे। अर्थात् इस सृष्टि के सृजन के पूर्व भी कोई सृष्टि थी।

प्रत्येक को कर्म के अनुसार फल देना—संसार में असंख्य प्राणी हैं, जिनकी गिनती करना तो दूर अनुमान लगाना भी सम्भव नहीं है।

प्रत्येक प्राणी को भोग, जाति, आयु उसके कर्मों के अनुसार प्राप्त होती है। मनुष्य जाति में ही देखें—कोई स्वस्थ-सुन्दर है, कोई कुरूप और अस्वस्थ है, अपाहिज है, कष्टों से जीवन

अभिशाप बना हुआ है। कोई गरीबी से दुःखी है, अपना व अपने परिवार का पालन करना कठिन है, परन्तु एक धनाढ्य और सम्पन्नता का जीवन व्यतीत कर रहा है। एक व्यक्ति जन्म लेते ही अरबों का मालिक बन गया, क्योंकि उसने अरबपति के परिवार में जन्म लिया। दूसरा ऐसे परिवार में जन्मा जहाँ पहले से ही कर्जा था। इसके जन्म लेते ही यह भी परिवार के कारण कर्जदार बन गया। वैसे ही एक तीव्र बुद्धिवाला है, तो दूसरा मन्दबुद्धि या पागल देखा गया।

ये सब क्यों और कौन करता है? उत्तर—यह सब जन्म-जन्मान्तरों के कर्मों के फल हैं। इसका फल देनेवाला कौन है। उत्तर होगा—जो कर्मों का हिसाब रख सके।

जन्म-जन्मान्तरों का हिसाब कौन रख सकता है? वेद में कहा है—

न किल्बिषमत्र नाधारो अस्ति न यन्मित्रैः समममान् एति ।

अनूनं पात्रं निहितं न एतत्पुत्तारं पुक्वः पुनरा विशाति ॥

—अथर्व० १२।३।४८

अर्थात्—परमात्मा अपनी ओर से किसी भी जीव को न सुख देते हैं, न दुःख देते हैं, यह सारी व्यवस्था उसके कर्मानुसार है। स्वाभाविक ज्ञान-बल-क्रिया के अनुसार जीवों के कर्मानुसार ही ईश्वर फल प्रदाता है, जीव फल पाने में परतन्त्र है।

योगिराज कृष्ण को अपनी व्यथा में महाभारत में यही तो कहा कि, ईश्वर सबको यथायोग फल देता है।

नूनं व्यंपकृतं किञ्चिन्मया पूर्वेषु जन्मसु ।

येन मां दुःख भोगषु धाता कर्मसु युक्तवान् ।

परिणामश्च वयसः सर्वबन्धुक्षयश्च मे ॥

—महाभारत स्त्री पर्व १।११

अर्थात्—हे कृष्ण! हमने पूर्व जन्म में निश्चित रूप से बहुत पाप किए हैं। इसी कारण विधाता (ईश्वर) की ओर से हमें यह दारुण दुःख प्राप्त हुआ है। मैं बूढ़ा हो गया हूँ और मेरे सभी बन्धु-बान्धव मृत्यु को प्राप्त हुए हैं।

ईश्वर से दूरी क्यों ?

१०१

रामायण में भी बताया है—

कौशल्या कह दोष न काहू, कर्म विवश दुःख-सुख क्षति लाहू ।
कठिन कर्म गति जान विधाता, जो शुभ-अशुभ कर्म फल दाता ।

अर्थात्—कौशल्या जी ने सुमित्रा को कहा—इसमें विधाता का कोई दोष नहीं, दुःख-सुख, हानि-लाभ सब कर्मों के अधीन प्राप्त होते हैं। कर्मों की गति बड़ी कठिनता से समझ में आती है। उसे विधाता ही जानता है, और वही शुभ-अशुभ कर्मों का फल देनेवाला है।

तात जीय जनि करहु गलानी । ईश अधीन जीव गति जानी ॥

दोष देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुरु साधु सभा नहिं सेई ॥

अर्थात्—हे तात ! तुम अपने हृदय में व्यर्थ ग्लानि करते हो । जीव की गति ईश्वराधीन समझो अर्थात् सुख-दुःख की प्राप्ति उनके कर्मानुसार ईश्वर ही कराते हैं ।

योगिराज श्रीकृष्ण ने कहा—

भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।

—गीता १८।६१

अर्थात्—वही परमात्मा सबको यन्त्र बन घुमाता रहता है ।

कर्मफल देनेवाला परमात्मा है । सामवेद के एक मन्त्र में इस सम्बन्ध में कहा गया—

^{३ १ २} दूतं वो ^{३ १ २} विश्ववेदसं ^{३ २ ३ १ २} हव्यवाहममर्त्यम् । ^{१ २} यजिष्ठमृज्जसे ^{३ २} गिरा ॥

—सामवेद १२

अर्थात्—हे परमेश्वर ! तू दुःखनाशक, सर्वज्ञ, कर्मफल दाता और अमर है । मैं तेरी स्तुति करता हूँ ।

एक प्रसिद्ध भजन की पंक्तियों से इन भावों की पुष्टि होती है ।

मेरे दाता के दरबार में सब लोगों का खाता है ।

जो कोई जैसी करनी करता, वैसा ही फल पाता है ॥

परमात्मा सबको यथायोग्य अर्थात् जैसे जिसके कर्म है, वैसा उसको फल प्रदान करता है, इसलिए उसे न्यायकारी कहा जाता है ।

कर्मों से छुटकारा भोग के पश्चात् ही सम्भव है, यदि किसी अपराधी ने कोई अपराध किया तो उसे सजा मिलनी चाहिए यह सही न्याय है। किन्तु वह अपराधी अपराध करने पर भी किसी राजा या न्यायाधीश को कुछ प्रदान कर दे और राजा द्वारा उसे दण्ड से मुक्त कर दिया जावे तो वह सही न्याय नहीं होगा।

आज यही तो भ्रष्टाचार में लिप्त समाज में हो रहा है, किन्तु ईश्वर का न्याय सत्य पर है, क्योंकि वह कण-कण में व्याप्त तथा सदा रहनेवाला है। इसलिए वह हर कर्म का स्वयं साक्षी है, उसके निर्णय में कोई भूल हो ही नहीं सकती।

दूसरा यह कि किसी मनुष्य से न तो वह किसी कारण से वह राग रखता है न द्वेष। इसलिए उसका न्याय निष्पक्ष है। परमात्मा स्वयं पूर्ण, आनन्द का भण्डार, सब कुछ देनेवाला, सबसे महान्, सबसे धनवान्, समस्त विश्व का स्वामी है, साथ ही निराकार भी है, इसलिए उसे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है।

वह कोई व्यक्ति या नेता अथवा भ्रष्ट अधिकारी, न्यायाधीश भी नहीं, जो अपनी चापलूसी, जय-जयकार या थोड़ा पानी, प्रसाद, चोला, मुकुट या मन्दिर की रिश्वत लेकर पाप से मुक्ति दे देवे। यदि ऐसा होने लगा तो कोई धनवान् पापी रहेगा ही नहीं और फिर परमात्मा भी भ्रष्टचारी कहलाने लगेगा। परमात्मा का न्याय सत्य है, अपरिवर्तनशील है, जो जैसा करता है, उसको वैसा ही फल देता है।

एक प्रश्न उठता है कि, परमात्मा बुरे काम करने से रोकता क्यों नहीं?

इसका बड़ा सरल उत्तर है कि अन्य प्राणियों की अपेक्षा परमात्मा ने मनुष्य को विशेष बुद्धि प्रदान की है तथा कार्य करने की स्वतन्त्रता भी दी है। इस के अनुसार मनुष्य कर्म तो करने में स्वतन्त्र हैं, किन्तु परिणाम भोगने में परतन्त्र हैं। जिस प्रकार एक परीक्षक परीक्षा भवन में विद्यार्थी को परीक्षा देते हुए देखता है, तब उसे वहाँ कोई सलाह नहीं देता, वहाँ उसकी गलती नहीं बताता। किन्तु जब उत्तर पुस्तिका का निरीक्षण करता है, तो वह

ईश्वर से दूरी क्यों ?

१०३

उसी अनुसार उसे नम्बर देता है, जैसा विद्यार्थी ने उत्तर पुस्तिका में लिखा है।

यही कार्य परमात्मा करता है। हमारे सब कर्मों को देखता है और उसके अनुसार हिसाब रखता है और फिर उसी अनुसार हमें कर्मों का फल भी देता है।

निष्कर्ष में, हम यह कह सकते हैं कि जो सृष्टि का निर्माण, पालन व प्रलय करता है, जो प्राणियों को कर्म के अनुसार उसका फल देता है, यही परमात्मा की पहचान है। जो स्वयं अल्पज्ञ है, दूसरों पर आश्रित है, सृष्टि के किसी भाग पर या कुछ काल के लिए जिसका आना-जाना हो, वह परमात्मा नहीं हो सकता। इस निश्चित विचार को मानने के उपरान्त ही परमात्मा का सही बोध हो सकेगा। परमात्मा छोटे-छोटे-से कार्यों के लिए जन्म लेवे, यह धारणा उचित नहीं है। वह सर्वशक्तिमान् और उसके जो कार्य हैं, वह और कोई नहीं कर सकता है। परमेश्वर परमेश्वर के करने के कार्य करता है, वह मनुष्यों के करने के कार्य नहीं कर सकता।



अन्त में—प्रिय पाठकगण! वह ईश्वर कैसा है ? कितने हैं ? कहाँ रहता है ? हमने इस पर विचार किया है। निष्कर्ष में, ईश्वर सर्वव्यापक है, निराकार है, एक है तथा वह कर्मों का फल देनेवाला है, यह बताने का प्रयास ही किया है। अपनी इस बात को पुनः कहना चाहूँगा कि जो कुछ आपने पढ़ा, उसको मैंने केवल संग्रह किया है, यही प्रयास मेरा है। ये सारे कथन स्थापित ग्रन्थों से हैं और मान्य महापुरुषों, सन्तों, विद्वानों के विचारों से ओत-प्रोत हैं। सत्य को समझकर असत्य का त्याग करना पुरुषार्थ है, प्रगतिपथ है, आत्मोन्नति है। किन्तु असत्य या भ्रम की वास्तविकता जानकर भी उसे न त्यागना दुर्भाग्य है, आत्मा की कमजोरी व उसका हनन है और विकास पथ से विमुख होना है।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वतीजी ने अपने जीवन में लगभग साढ़े तीन हजार पुस्तकों, ग्रन्थों, विभिन्न सम्प्रदायों के साहित्य, मजहबी पुस्तकों और मान्यताओं को पढ़ा। मात्र पढ़ा ही नहीं, उन पर विचार किया, उचित-अनुचित का निर्णय किया, इसका निर्णय उनके अमरग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश से होता है। सत्यार्थप्रकाश में सत्य प्रतिपादन करने व भ्रम मिटाने के लिए जगह-जगह ऐसी अनेक पुस्तकों, धर्मग्रन्थ में उल्लिखित बातों का उल्लेख किया है। यदि उन सब पर उनका चिन्तन नहीं होता तो उन ग्रन्थों या मान्यताओं के बारे में लिखना सम्भव नहीं हो सकता था। सच्चे ईश्वर की खोज उनके जीवन का एक महत्त्वपूर्ण लक्ष्य था, इसलिए ईश्वर के सम्बन्ध में पढ़ने, समझने, विचार करने के पश्चात् उन्होंने संसार के सर्वोत्तम, सर्वप्रथम एवं पूर्ण सनातन वैदिक धर्म के आधार वेदों को भी पढ़ा और फिर ईश्वर के सम्बन्ध में जो लिखा यह वही है। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है, उसी की उपासना करनी चाहिए।

महर्षि दयानन्द ने उस परमात्मा का महत्त्व अपने स्वयं के मत के अनुसार नहीं अपितु अनेक धार्मिक पुस्तकों और प्राचीन ऋषियों के ग्रन्थों के आधार पर जिसे राम, कृष्ण, आचार्य मनु आदि ने श्रेष्ठ माना उनके आधार पर ही हमें बताया।

ईश्वर ने हमें निर्मल बुद्धि इसलिए दी है कि हमारे सामने जो भी हो उसे समझकर उचित-अनुचित का ज्ञान कर फिर मानें। यही मानवता का लक्षण है, यही जीवन की सार्थकता है। उचित है उसे ही ग्रहण कर लें, जो व्यर्थ है उसे त्याग दें—

सार-सार को गहिके, थोथा देय उड़ाय।

इसलिए निष्पक्ष भाव से अपना निर्णय लेवें जिसे आत्मा स्वीकार तो करती है। पर पूर्व के विचारों से बंधे बन्धनों के कारण, उसे कैसे छोड़ें, इस विचार से कुछ भी भला नहीं होगा।

परमात्मा से हमारे सम्बन्ध हैं, वाणी के द्वारा हम अनेक बार

ईश्वर से दूरी क्यों?

१०५

बोलते हैं,

त्वमेव माता च पिता त्वमेव, त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।

त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव, त्वमेव सर्वम् मम देव देवः ॥

जो हमारा माता-पिता, भाई-सखा, सम्पत्ति सब कुछ है वह भला हमसे दूर कैसे रह सकता है? वह सदा हमारे साथ है, सदा रहेगा और उसके व हमारे मध्य किसी तीसरे की आवश्यकता नहीं है। यह आडम्बर व पाखण्ड के कारण व्याप्त हो गया है। स्वार्थ के कारण गुरुडम फैलाकर अपनी दुकानदारी चलानेवालों ने यह प्रचार किया है कि उससे मिलना बहुत कठिन है, उससे मिलने के लिए किसी माध्यम (गुरु एजेण्ट, पैगम्बर) की आवश्यकता होती है, इनके बिना मिला ही नहीं जा सकता।

उस परमात्मा व आपके बीच समय, स्थान या किसी औपचारिकता का बन्धन नहीं है, आत्मा और परमात्मा का, इसी पंचभूत से निर्मित चोले में रहने का एक ही स्थान है। एक बात और ध्यान से पढ़कर सोचें—

हमें यदि किसी राजा या अधिकारी से कोई कार्य है तो हमारी बात उस तक पहुँचानी पड़ेगी, उसके समक्ष हमारे कार्य का प्रयोजन पहुँचाना पड़ेगा। किन्तु हम उस राजा या अधिकारी के पास जाना नहीं चाहते, उसके स्थान पर भ्रमवश हम किसी अन्य को अपनी इच्छा व्यक्त कर दें, दुःखड़ा सुना देवें या बाहर खड़े किसी दूसरे व्यक्ति को सुना देवें तो क्या आपका काम बन जावेगा? निश्चित ही नहीं बनेगा। क्योंकि जिससे प्रार्थना करनी थी उससे तो की नहीं? उसके पास तो तुम्हारी प्रार्थना पहुँची नहीं? और ईश्वर ने अपनी बात सुनने के लिए कोई कर्मचारी, एजेण्ट, पैगम्बर, गुरु, मौलवी, पादरी आदि नियुक्त किए नहीं हैं। वह तो स्वयं ही सब सुनता है।

थोड़ा इस पर विचार करें और अपने द्वारा किए जानेवाले कार्य पर ध्यान देवें कि कहीं हम भी तो ऐसा नहीं कर रहे हैं? वास्तविकता यही है कि हम भी उस परमात्मा के स्थान पर उसके द्वारा निर्मित वस्तुओं, स्थानों या व्यक्तियों को पूज रहे हैं। नदी, पहाड़, वृक्ष, मनुष्यों की पूजा करके हम सोच रहे हैं कि

हम ईश्वर पूजा कर रहे हैं।

ईश्वर के समान अन्य कोई नहीं, उसके जैसा महान् कोई नहीं, सृष्टि का निर्माता, रक्षक, प्रलयकारी, प्रत्येक को कर्म फल देनेवाला उसके अतिरिक्त कोई नहीं, परन्तु हम उसके स्थान पर छोटी-छोटी-सी वस्तुओं, स्थान या व्यक्तियों की पूजा कर रहे हैं, उनको अपना सब कुछ मान रहे हैं, उनकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहे हैं। वास्तव में यह ईश्वर का निरादर है, उसके प्रति फैला अन्धविश्वास व अज्ञानता है। पूजा तो केवल उस ईश्वर की ही होना चाहिए, जो चैतन्य है, सभी का स्वामी है, तभी भक्ति का लाभ होगा।

ईश्वर के सत्यस्वरूप को पहचाने बिना उसके स्थान पर अन्धविश्वास पनप गया है। ईश्वर का स्थान गलत मान्यताओं ने ले लिया है। क्या शराब पीना, मांस खाना, चरस, गांजा-भांग खाना, पराई स्त्री के साथ सम्बन्ध रखना, जुआ खेलना आप अच्छा मानते हैं?

निश्चित ही किसी भी भले व्यक्ति का उत्तर होगा, नहीं ये सब गलत और निदनीय है।

किन्तु ये दुर्गुण, दुर्व्यसन काल्पनिक रूप से या किसी षड्यन्त्र के कारण सनातन धर्म में मान्य देवी-देवता जिन्हें ईश्वर मानते हैं, उनके जीवन के साथ जोड़ दिए गए। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि उनकी आड़ में करोड़ों श्रद्धालु इसे अच्छा मानकर उसका अनुसरण भी कर रहे हैं और जीवन से पतित हो रहे हैं।

आप थोड़ा विचार करें, वह परमपिता परमात्मा जो विकार रहित हैं, इच्छाओं व भोगों से मुक्त हैं, सबको सत्य बुद्धि को देनेवाला है, शुद्ध पवित्र है, दूसरों को बुरे कर्मों का दण्ड देनेवाला व न्यायाधीश है, क्या वह स्वयं दुर्गुणों से लित हो सकता है?

किन्तु परमात्मा की सही जानकारी न होने से उसके कई रूप मानने के कारण ऐसी गलत मान्यताएँ प्रचलित हो गई हैं। ईश्वर के नाम पर मांस, शराब, गांजा, चरस का सेवन करनेवालों ने स्वयं ईश्वर को ऐसे दुर्गुणों से लित होनेवाला बता दिया।

ईश्वर से दूरी क्यों?

१०७

उसके नाम पर बलि दी जा रही है। अरे, ईश्वर सबका पालक, रक्षक, पिता है, ये बकरी, भेड़, पाड़ा, मुर्गा सभी उसकी सन्तान हैं, क्या उसके सामने बच्चे को काटकर चढ़ाने से वह खुश होगा? इतना पाप तो कोई साधारण मनुष्य भी अपने बच्चों के प्रति नहीं कर सकता। किन्तु अज्ञानतावश अनेक मूक प्राणियों की हत्या ईश्वर के नाम पर की जाती है। क्या यह उचित है?

ऐसी मान्यता कुछ स्वार्थी तत्त्वों ने या सनातन वैदिक धर्म विरोधियों ने ईश्वर को कलंकित करने के लिए फैलाई है, उसके कई रूप बता दिए। वास्तव में यह सनातन धर्म के प्रति षड्यन्त्र है, ईश्वर का निरादर है।

परमात्मा का अनमोल उपहार बुद्धि है, हम उसके आधार पर ही ईश्वर को मानें और जीवन का कल्याण करें।

मूर्ति-पूजा को लेकर व्यक्ति प्रायः दो बातें कहता है। एक तो यह कि मूर्ति पहली सीढ़ी है, दूसरी पूजा का आधार तो होना चाहिए।

मैं उन ऐसे भोले भाइयों से निवेदन करना चाहता हूँ कि पहली सीढ़ी मानकर पूरी जिन्दगी मूर्ति-पूजा करते रहे तो दूसरी सीढ़ी कब चढ़ोगे? हमने ऐसा कोई व्यक्ति आज तक नहीं देखा जिसने कहा हो कि मूर्ति-पूजा करते-करते मुझे ज्ञान मिल गया और अब मूर्ति-पूजा छोड़कर सीधे ईश्वर का सान्निध्य प्राप्त कर लिया। थोड़ा विचार करें, नर्सरी से के० जी० या पहली में ही अपने जीवन का पूरा समय लगानेवाले क्या कभी आगे की कक्षाओं में पहुँच सकेंगे? क्या कभी आगे की पढ़ाई कर सकेंगे? निश्चित ही नहीं? फिर तीसरी, चौथी कक्षा का तो कभी नम्बर आनेवाला ही नहीं। पता नहीं अगला जन्म मानव का मिले या न मिले फिर तो पहली सीढ़ी के बाद आगे बढ़ने का मार्ग ही समाप्त हो गया।

एक बात पर ध्यान दें। किसी जीवित व्यक्ति की मूर्ति बनाकर पूजा नहीं की जाती है। तो फिर परमात्मा जब हमेशा है, फिर उसकी मूर्ति कैसे बनेगी? परमात्मा के बारे में यह विचार है कि वह है नहीं, इसलिए उसके स्थान पर उसकी मूर्ति

बनाकर पूज लेते हैं, क्या यह ठीक है ? तो जो मेरे भोले भाई-बहन मूर्ति को प्रथम सीढ़ी मानकर उसमें ईश्वर की उपासना मानकर ध्यान लगा रहे हैं, जबकि यह ईश्वर नहीं उसकी प्रतिमा है, उनका क्या होगा, वे स्वयं विचार करें।

दूसरा निवेदन करना चाहता हूँ कि आप चित्र या मूर्ति, जिसे आप ईश्वर की बताते हैं, क्या कभी किसी ने उसे ईश्वर को देखा है ? यदि किसी ने उसे देखा नहीं तो फिर उसकी आकृति कैसे बना सकते हैं ? जरा विचार करें, आपने जिसे देखा नहीं, जिसे सब निराकार कहते हैं, फिर उसकी मूर्ति कैसे बन सकती है ? यदि काल्पनिक बनी भी है, तो फिर भी वह सही नहीं है, अन्दाज से बनी है। इसी में एक और निवेदन करना चाहता हूँ कि दर्शन अन्दर देखने पर होते हैं। जब अन्दर झाँकते हैं तो उसकी महिमा दिखाई देती है। इसीलिए मूर्ति के सामने खड़े रहने पर भी आँखें मूंदकर पहले मूर्ति देखना बन्द करते हैं और अन्दर उससे मिलने का प्रयास करते हैं।

एक स्टेच्यू, प्रतिमा और मूर्ति में एक अन्तर हम जानते हैं। मूर्ति वह है जिसकी प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है जिसके लिए कई कार्यक्रम आयोजित कर प्राण डाले जाते हैं, घट-स्थापना की जाती है और उसे पण्डित, पुरोहित या समाज यह प्रमाण-पत्र देता है कि अब यह देवी-देवता या ईश्वर का रूप धारण कर चुकी है, क्योंकि इसमें विधि-विधान से प्राण डालने का उपक्रम हो चुका है।

एक साधारण बुद्धिवाला या छोटी कक्षा का विद्यार्थी भी प्राण का अर्थ और महत्त्व समझता है, हर व्यक्ति यह जानता है कि शरीर को चलानेवाली शक्ति प्राण हैं, शरीर से प्राण निकल जाते हैं तो शरीर की हलचल समाप्त हो जाती है, वह शव हो जाता है। अर्थात् प्राण के द्वारा चेतना, हलचल, सक्रियता रहती है।

मैं उन भाई-बहनों से पूछना चाहता हूँ कि आपने कोई ऐसी मूर्ति देखी जिसकी प्राण प्रतिष्ठा की गई हो और फिर उसमें प्राण होने से वह कोई स्वतः क्रिया या चेतना करने लगी या उसमें देखी हो ? यदि प्राण हो तो उसमें चेतना दिखाई देना प्राण होने

का प्रमाण है।

यदि वह कोई हरकत या क्रिया अपने आप नहीं करती है तो वह निष्प्राण है, जड़ है, अचेतन है। प्राण-प्रतिष्ठा के बाद भी वह कुछ नहीं कर सकती। अरे, उसके सामने से उसके मुकुट, चाँदी के सिंहासन जिस पर उसे मन्दिर में बैठाया हो वो भी चोरी हो जाते हैं और वह रोक नहीं सकती। किसी भी माता-पिता के बच्चे उसके सामने जब कोई गलत कार्य करें, झूठ बोलें, चोरी करें तो वे उसे रोकेँगे, डाँटेंगे, सजा भी देंगे ताकि वह दूसरी बार ऐसा न करे। किन्तु मन्दिर की मूर्तियाँ मन्दिर में चोरी होते हुए देखते रहें, अपनी सन्तानों को पाप करने से रोके नहीं, तो फिर यह उचित नहीं है। इससे तो पाप करने की छूट दी जा रही है मानना होगा। यह रुकावट इसलिए नहीं हो सकती क्योंकि वह निष्प्राण है, चेतना विहीन है। मूर्ति में प्राण नहीं है यह सभी जानते हैं। यदि प्राण मानते तो दशहरे पर काली की और गणेश-चतुर्थी पर गणेश की मूर्तियाँ हम पानी में क्यों छोड़ते? प्राण रहते पानी में डुबोना तो हत्या है, पाप है, फिर ऐसा क्यों करते हैं?

अनेक व्यक्तियों की रोजी-रोटी इससे चल रही है उनके इस कार्य के लिए कई कथाएँ, चमत्कारपूर्ण घटनाएँ पुस्तकों में छपी हैं, इसका लाभ सब उठा रहे हैं।

इस प्रकार हम परमात्मा को छोड़कर उसकी जगह उसकी वस्तुओं को पूज रहे हैं, हम पहाड़, नदियों, फलदार वृक्ष या जिसे उसने बनाया उनको पूज रहे हैं। यह परमात्मा की पूजा नहीं, यह तो उसकी वस्तुओं की पूजा कर रहे हैं और परमात्मा की उपेक्षा कर रहे हैं।

मूर्ति में ईश्वर को मानने से कई प्रकार की हानियाँ आज तक हम उठा चुके हैं। पहली तो हमारे विश्वास को ठेस पहुंचाती है और ईश्वर से हमारा विश्वास कम हो रहा है। आज की नई पीढ़ी नास्तिक होती जा रही है, जिस मूर्ति को ईश्वर मानकर पूजा जाता है, जिसे सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान्, सर्वान्तर्यामी कहा जाता है उसके रहते उसी के सामने मन्दिरों में चोरियाँ

होती हैं। देश की अपरिमित सम्पत्ति मुहम्मद गजनवी लूटकर ले गया, केवल सम्पत्ति ही नहीं लेकर गया अनेक स्त्री-पुरुषों को गुलाम बनाकर ले गया। औरंगजेब ने जीवन में अनगिनत मूर्तियाँ भंग कर दी या उखाड़कर फेंक दी।

जब मूर्तियाँ तोड़ी गई उन आतताइयों का कुछ नहीं हुआ। तो प्रश्न उठा, ये कैसा भगवान है? जो अपनी रक्षा स्वयं नहीं कर सकता? दुष्टों को दण्ड नहीं दे सकता?

इन सबसे ईश्वर के सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक होने पर शंका होना स्वाभाविक है। यही ईश्वर से दूर ले जानेवाले कारण हैं।

मूर्ति तक ही ईश्वर को माननेवाले अनेक व्यक्ति किसी भी निन्दनीय कार्य को करने में संकोच नहीं करते, निडर होकर सारे पाप करते हैं। क्योंकि उनकी दृष्टि में तो ईश्वर तो मन्दिर में हैं, फिर उस ईश्वर को साकार मानने के कारण ही जैसे मनुष्य को रुपया, पैसा, वस्त्र, भोजन, फल आदि आवश्यकता होती है, वैसे ही वह ईश्वर को भी मानकर कुछ भेंट चढ़ाकर सोचता है, कि उसने ईश्वर को प्रसन्न कर लिया और उनके पाप नष्ट हो गए हैं। इसी भावना से वे २४ घण्टे में एक बार मन्दिर जाकर अपने कुकर्मों की क्षमा माँग आते हैं और कुछ चढ़ावा चढ़ा देते हैं। ईश्वर के नाम पर कभी चोला, कभी भण्डारा, कभी पाठ करवाकर अपने पापों को धो लेते हैं। इस प्रवृत्ति के कारण पाप बढ़ रहा है, धार्मिक कहा जानेवाला पापाचरण करते हुए भी धार्मिक माना जा रहा है।

एक बार चार विद्यार्थी किसी गुरु के पास शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। गुरुजी ने 'ईश्वर सर्वव्यापक है, वह हर समय सबको देखता है, कोई क्षण उसकी दृष्टि से बचा नहीं जा सकता है', ऐसा पाठ पढ़ाया था।

कुछ समय पश्चात् इस पाठ के सम्बन्ध में अपने शिष्यों की परीक्षा लेने का विचार किया। उन्होंने चारों शिष्यों को एक-एक मटकी दी और कहा—इस मटकी को चुपचाप ऐसे स्थान पर जाकर फोड़ दो जहाँ तुम्हें कोई भी देखता न हो।

चारों शिष्य मटकी लेकर चले गये। तीन शिष्य कुछ समय पश्चात् मटकी फोड़कर लौट आए किन्तु चौथा मटकी वापस ले आया। पहले तीनों शिष्यों से 'मटकी कहाँ फोड़ी' पूछने पर एक ने बताया—गुरुजी! मैं दौड़कर गया और उस मोटे वृक्ष की आड़ में जाकर फोड़ आया, वहाँ कोई नहीं देख रहा था।

दूसरे ने कहा गुरुजी! वहाँ एक बड़ा गड्ढा था, मैं उसमें नीचे उतरा, देखा, कोई नहीं देख रहा है और मटकी फोड़ दी।

तीसरे ने कहा—गुरुजी! मैंने तो और गुप्त स्थान चुना, मैं तो उस तालाब में गया, पानी में उतरा और पानी के अन्दर डुबकी लगाई, वहाँ कोई नहीं था। मैंने वहाँ मटकी फोड़ दी।

चौथा बोला—गुरुजी! मुझे तो कोई ऐसा स्थान दिखाई नहीं दिया जो ईश्वर की दृष्टि से बच सकता है। आपने ही बताया था कि ईश्वर हर जगह रहता है, कण-कण में उसका निवास है, सर्वव्यापक है, तो फिर उसकी निगाह से कैसे बच सकते हैं।

मैंने जब भी प्रयास किया उसी समय मेरे मन में यह बात उठ गई कि ईश्वर देख रहा है और मैं मटकी फोड़ नहीं सका। गुरुजी ने शिष्य को शाबासी दी और कहा तुम्हीं इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हो।

इस प्रकार ईश्वर को सर्वव्यापक माननेवाले के मन में सदा बुरे काम के प्रति भय बना रहेगा। उसके मन में सदा यह विचार बना रहेगा कि ईश्वर मेरे कार्य को हर समय देख रहा है और देखकर वह प्रत्येक अच्छे कर्म का अच्छा व बुरे कर्म का बुरा फल अवश्य प्रदान करेगा, क्योंकि यह उसकी व्यवस्था है, इसलिए वह सतर्क रहेगा। अन्त में आपसे यही निवेदन है कि सत्य को समझें व ईश्वर के सत्य स्वरूप को समझकर उसे वैसा ही मानें, जैसा वह है, यही उसकी सही प्रार्थना व भक्ति है। इत्योम्।

पं० हरिशरण सिद्धान्तालङ्कार कृत चतुर्वेद भाष्य का भव्य प्रकाशन

चौदह खण्ड, आकार-२०×३०/८ में,
८४०० पृष्ठों में प्रकाशित

इस सहज समझ आनेवाले भाष्य के लिए भाष्यकार ने सम्पूर्ण जीवन ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए कठोर तप करके इसे तैयार किया। कम्प्यूटर द्वारा कम्पोज करवाकर ऑफसेट पर प्रकाशित इस भाष्य में मन्त्रों पर स्वर लगाये गये हैं। प्रत्येक शब्द का हिन्दी भाषा में अर्थ तथा भावार्थ दिया गया है। वेद के गूढ़ार्थ को सरल भाषा में प्रस्तुत किया गया है।

₹५००.०० तीन सहस्र पाँच सौ रुपये भिजवाने पर चारों वेदों के साथ ₹५००.०० रुपये मूल्य की पुस्तकें उपहार में प्राप्त करें।

₹५५०.०० तीन सहस्र पाँच सौ पचास रुपये ड्राफ्ट, धनादेश (मनिआर्डर) द्वारा अथवा हमारे पंजाब नेशनल बैंक के खाता संख्या-4161000100032121 श्री घूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास में जमा करवाकर हमें सूचना देवें। पचास रुपये बैंक चार्ज व डाकव्यय के लिए हैं। डाकघर द्वारा मँगवाने पर डाकव्यय की वी.पी. करेंगे।

जानकारी के लिए सम्पर्क करें-09887452959



- प्रकाश आर्य

श्री बूडमल प्रहलादकुमार आर्य धर्मार्थ न्यास
E-mail : argaprabhakar@yahoo.com